युग
जनवरी-मार्च 2011
स्पंदन

त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका

युग स्पंदन

वर्ष : 23 □ अंक : 1 □ जनवरी-मार्च 2011

गीत/ ग़ज़ल/ कविता

कहानी

समीक्षा

रेखांकन एवं चित्र

संपादक
डॉ. भ.प्र. निदारिया

विशेष सहयोग
गीता, संतोष बंसल

संपादकीय कार्यालय
10841/44, मानक पुरा
करोल बाग
नई दिल्ली-110005
ई-मेल :
yugspandan_bpn@yahoo.com

सहयोग राशि
एक प्रति : 20 रुपए
वार्षिक : 80 रुपए

हिंदीतरभाषी हिंदी नवलेखक शिविर

साहित्य की विविध विधाओं, अनुवाद, पत्रकारिता आदि की विस्तृत और अधुनातन जानकारी देने के उद्देश्य से आयोजित किए जाने वाले आठ दिवसीय हिंदीतरभाषी हिंदी नवलेखक शिविरों में भाग लेने के इच्छुक हिंदीतरभाषी हिंदी नवलेखकों से निम्नलिखित निर्धारित प्रपत्र के अनुसार आवेदन आमंत्रित हैं :

नवीनतम फोटो

हिंदीतरभाषी हिंदी नवलेखक शिविर के लिए आवेदन प्रपत्र

(1) नाम (पूरा व स्पष्ट हिंदी में तथा कैपीटल लैटर्स में अंग्रेजी में), (2) मातृभाषा, (3) जन्म तिथि, (4) जन्म स्थान, (5) राज्य जिससे संबंधित हैं, (6) शैक्षिक योग्यताएं, (7) महाविद्यालय/ विश्वविद्यालय जिसमें अध्ययन कर रहे हैं, (8) वर्तमान व्यवसाय/कार्य अनुभव, (9) हिंदी लेखन का अनुभव, (10) संलग्न हिंदी रचना का विषय (स्वरचित, मौलिक रचना संलग्न करें जिसे लौटाया नहीं जाएगा), (11) किन-किन भाषाओं का ज्ञान है, (12) अन्य भाषाओं में लिखी आपकी रचनाओं का विवरण, (13) साहित्यिक/ सांस्कृतिक कार्यों में योगदान का विवरण, (14) क्या आप हमारे द्वारा चुने गए स्थान पर आकर आठ दिन रहने को तैयार हैं?, (15) केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा आयोजित अब तक कितने शिविरों में भाग लिया है? विवरण दें।, (16) क्या आपने केंद्रीय हिंदी निदेशालय के किसी कार्यक्रम में भाग लिया है? यदि हां, तो विवरण दें।, (17) क्या आप शिविर अवधि में सभी नियमों का पूरी तरह से पालन करने के लिए सहमत हैं, (18) पूरा व स्पष्ट पता हिंदी तथा अंग्रेजी में दूरभाष, ई-मेल एवं पिन कोड सहित।

मैं प्रमाणित करता/करती हूं कि उपर्युक्त विवरण सही है।

आवेदक के हस्ताक्षर

नोट :

1. आवेदन प्रपत्र के सभी कालमों में मांगी गई सूचना शब्दों में भरें, अन्यथा आपके आवेदन प्रपत्र पर विचार नहीं किया जाएगा।
2. आवेदन प्रपत्र के साथ स्वरचित, मौलिक एवं अप्रकाशित रचना और अपना एक फोटो संलग्न करना अनिवार्य है।
3. कृपया निर्धारित प्रपत्र के अनुसार अपना आवेदन प्रपत्र भरकर **सहायक निदेशक (विस्तार-1) केंद्रीय हिंदी निदेशालय, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, उच्चतर शिक्षा विभाग, पश्चिमी खंड-7, रामकृष्ण पुरम, नई दिल्ली-110066** के पास भेजें।

फूलों से तो...

रतन जैन

फूलों से तो चाव नहीं है, पर कांटों से प्यार मुझे।
कांटों में ही पला बढ़ा हूं, देते हर्ष अपार मुझे।।

जन्मोदय से सांध्यकाल तक, शूलों ने ही दिया शरण,
इसीलिये मैंने कांटों का, अंतःकरण से किया वरण।
संघर्षों से तपकर निकला, वह कहलाया है कुंदन,
मधुबन की क्यों लिप्सा पालें? शूल माथ का जब चंदन।
दुनिया वालों ने दिखलाए, सपने झूठ हजार मुझे,
फूलों से तो चाव नहीं है, पर कांटों से प्यार मुझे।।

फूल कहीं अर्थी पर शोभित, और कहीं गलहार बना,
देवालय की वेदी पर भी, श्रद्धा का मनुहार बना।
मृदुल सुवासित फूलों को ही, बिखरा देखा धूलों में,
कभी न कोई राही ढूंढ़ा, मीठी छांव बबूलों में।
क्यों मध्यम श्रेणी में जन्मा, खलता बारंबार मुझे,
फूलों से तो चाव नहीं है, पर कांटों से प्यार मुझे।।

दुख-वेदना पीड़ाएं ही, कांटों का पर्याय है,
अंतर की धड़कनें सुनाती, हाय! हाय!! बस हाय है।
कांटों भरी जिंदगी जीना, ये भी कोई जीना है,
शूल-वेदना-विवश पात्र में, घुट-घुट आंसू पीना है।
हर सांसों में देना प्रभुवर! गीतों का श्रृंगार मुझे,
फूलों से तो चाव नहीं है, पर कांटों से प्यार मुझे।।

परिंदे इतना ज्यादा...

सजीवन मयंक

परिंदे इतने ज्यादा डर गए हैं।
शाम होने से पहले घर गए हैं।।
मैं सबके सामने जिंदा खड़ा हूं।
लोग कहते हैं कि हम मर गए हैं।।
जिधर जाना मना है उस सड़क पर।
घूमने शाम को अक्सर गए हैं।।
वो सच्ची बात कहना चाहता था।
उसी की ओर सब पत्थर गए हैं।।
नया एक दोस्त हम फिर से बना लें।
पुराने घाव सारे भर गए हैं।।
तुम्हारे प्रश्न तो काफी सरल थे।
हमारे सब गलत उत्तर गए हैं।।
ये सूरज चांद तारे आसमां तक।
हमारे पास से पढ़कर गए हैं।।

ग़ज़ल

नरेश हमिलपुरकर

ठोकरें, रुकावटें आती हैं, चलने में
सदियां बीत जाती हैं, संभलने में
कुछ भी बदलने में देर सही पर
नहीं कुछ भी देर तस्वीर बदलने में
मैं क्या जानूं क्या मजा है
परवाने को आखिर जलने में
दुआओं का अहम किरदार होता है
महकने में, फूलने-फलने में
नई जगह, नए लोग, नया सब कुछ
थोड़ा तो वक्त लगेगा घुलने मिलने में
औलाद क्या जाने, मां-बाप को क्या
सहना पड़ता है, बच्चों को पालने में
दुश्मनी, झगड़े नहीं होना खेल खेल में
बड़ों का लिहाज रखना मिलने बोलने में
कई दुआओं का असर होता है 'नरेश'
कष्ट विपत्ति-दुर्घटनाओं के टलने में

ग़ज़ल

कैलाश नीहारिका

दूब होने लगी बदरंग अब निखारें उसे
आज फिर साथ-साथ सींच के संवारें उसे
एक जंगल हमारे ज़हन में हरियाता है
सहम गया सुरीला पंछी, लो दुलारें उसे
फुनगियां धूल औ धुएं से चिमनियों-सी ढकीं
अधर में है कहीं बरसात फिर गुहारें उसे
क्यों मशीनों की तरह शब्द धड़धड़ाने लगे
जो टेर थम गई है साथ मिल उभारें उसे
खो गए किस दिशा में प्रेम के ढाई आखर
खोज के ला सके कोई चलो पुकारें उसे

ग़ज़ल

वासुदेवन 'शेष'

तेरी यादों से अब कभी दिल नहीं बहलते
तुझे अब देखता हूं तो अरमां नहीं मचलते
इस कदर ज़िंदगी ने अश्कबार किया है
अब कभी रोता हूं तो आंसू नहीं निकलते
दिल का शहर तो मुद्दतों से बेनूर है
कोई चिराग भी बीराने में नहीं जलते
मयस्सर उम्र भर खाक होते रहे अक्सर
दिल के गुलशन में अब गुल नहीं खिलते
लिपट लिपट के ग़म मेरे गले से लगते हैं
खुशनुमा लम्हें मेरे आगोश में नहीं पलते

सरिता जाती कहां

एस. प्रीतिलता

धीरे-धीरे डूबती रेत पूर्ण द्वीप
नित्य नहाती किनारे की घास
पायलों की आवाज से
घूमती वह अधखिली कली
यौवन भी पूर्ण अधिकार
जमा नहीं पाया उस पर।
किनारे के रेतीले वक्ष पर
उछलती दौड़ती, पद चिह्न गिनती
वह फूल की कली
कितनी प्रसन्नता से
खेलती हुई सहेलियों से पूछती
यह सरिता जाती कहां?
असमझ सहेलियां भी
खिलखिलाकर हंस पड़तीं
कहतीं फिर तुझसे मिलने
नहीं...नहीं...तेरे घर
मिलने तेरे पिता से
कहने तेरी मां से।
हौले-हौले दिन बीत जाते
ग्रीष्म सरिता की धारा-सी
सवाल का जवाब नहीं मिलता उसे
कहती मां तू बड़ी हो गयी
तन में उठते बदलाव पर
प्रश्न न कर पाती वह।
अचानक एक दिन, दिखाई देती
चलती हुई नगर के रास्ते में
हजारों आंखें हैं उस पर
उसकी आशाओं पर चाहते खेलने
लौट आती फिर किनारे पर
उपेक्षा कर लोगों की।
देखा बाढ़ में बहता एक युवक
दृढ़ मन उसका, सहारा दिया उसे
अनजान आलिंगन से
पास आ गयी थी वह
पहले स्पर्श का पहला कंपन
पूछा, यह सरिता जाती कहां?
दिखाऊँगा तुझे, मेरे साथ आएगी तो
चली पीछे-पीछे वह सयानी भोली
हिलने लगी पैनी लंबी घास
थोड़ी दूर पर कुटिया के पीछे
ज्यों अर्पित यौवन उसका हिला
नैनों से नदी बहाकर।
अब वह किसी से न पूछती
यह सरिता जाती कहां?

दोहे

भीखी प्रसाद 'वीरेंद्र

कटुता से कटुता बढ़े, बढ़े प्रीत से प्रीत
कटुता त्यागे ही मिले जग में अच्छे मीत।
जहर उगल कर क्या मिला, मनवा है हैरान,
ऐ मन, चल अब हम करें अमृत का संधान।
हीरा मन कोयला हुआ, यह चिंता की बात,
अब कैसे सजनी कटे घोर अमावस रात।
मैं कविता में ढूंढ़ता धरती औ आकाश,
क्षण-प्रति क्षण का सत्य, सत्य का सही सही उद्भाष।
चलो, चलें हम दो कदम प्यार-प्रीत के संग,
खुशबू फैली, मन रंगा, खुशबू के ही रंग।
आओ, बैठें औ करें प्यार-प्रीति की बात,
मिट जायेंगी दूरियां, कट जायेगी रात।

ग़ज़ल

आचार्य सारथी

जिस्म जैसे हैं जंगलों की तरह
और रूहें हैं घायलों की तरह
फ़ैसले आजकल नहीं होते
जुर्म होते हैं फ़ैसलों की तरह
आज के दौर में नहीं मिलता
प्यार भी रेशमी पलों की तरह
आदमीपन की रोशनी खोकर
दौर भटका है पागलों की तरह
'सारथी' हादसे भी मिलते हैं
प्यार के भेष में छलों की तरह

रेल यात्रा

रतनलाल शांत

कितने हथौड़े
पीट रहे
हमारे सब्र की
धमनियां
जिद मगर देखो हमारी
हों वार
और तेज
लगातार।

गीत

के.जे. क्लेमेंट मास्टर

जब लड़ीं तेरी-मेरी आंखें तब
नाच रही है दिल में वो छाया, दिल में वो छाया।
चुरा लिया दिल मेरा अब तूने
जाने न दूंगा इधर से कहीं, इधर से कहीं।
जब लड़ीं तेरी-मेरी आंखें तब
नाच रही है दिल में वो छाया, दिल में वो छाया।
पिरो लिया दिलों को इक डोरी में
टूटने ना दूंगा मिले दिलों को, मिले दिलों को।
जीना है, है तो इक साथ हम मरना है...
मरना है, है तो इक साथ हम, इक साथ हम।
जब लड़ीं तेरी-मेरी आंखें तब
नाच रही है दिल में वो छाया, दिल में वो छाया।

हवा

कृष्ण कुमार 'भारतीय'

हवा
जो चलती थी कभी
महकती हुई
बाग-बगीचों, गली-कूचों में
अनथक, अविरल
सरपट बहती ही रहती थी।
सभी को
फूलों से मिली सुगंध बांटकर
स्वयं कंटीली चुभन सहकर
चलते रहने को प्रेरित थी।
और अब
भूल चुकी है अपनी मर्यादाएं
खुशबू को समेटकर
घर की चारदीवारी में
बांटती है सिर्फ
चुभन।

कब सीखोगे तुम

मंजु दवे

कब सीखोगे तुम...
खाली पन्नों पर लिखी
कविता पढ़ना
मेरी आवाज़ का नकाब हटाकर
अपने कानों को
मेरी खामोशी तक ले जाना
और सुनना।
ठहरे पानी में सदियों पहली
डूब चुके पत्थरों के
गिरने की अनुगूंज
कब सीखोगे तुम...
मेरी भटकी आंखों में
अपना पता लगाना
पांचों उंगलियों से बंधी मेरी
बंद मुट्ठी के ढीलेपन को
समझ पाना
मेरी सधी उड़ान के
कंपन को महसूस करना
तेज़ रफ्तार से ढके
मेरे लड़खड़ाते पैरों को देख पाना
कब सीखोगे तुम...
खौलते पानी में उठते बुलबुलों से
मेरे हर आवरित झूठ के
तपे हुए सच को पकड़ पाना।

कुर्सी

मो. सहिदुल इस्लाम

मैं एक टूटी हुई कुर्सी हूं
लोग मुझे लेकर
क्यों शोर मचाते हैं
क्यों शोर मचाते हैं?
अपने अधीन लाने के लिए
मुझे इतना मत खींचो
और भी टूट जाऊंगी
और भी टूट जाऊंगी।
लोग बैठ नहीं सकेंगे, पछताएंगे
मुझे लेकर दुनिया के लोग
राजनीति कर रहे हैं
मैं निर्जीव हूं फिर भी मुझे
चोट लगती है
लेकिन मेरी हालत पर कौन रोता है?
मेरी मरम्मत पर किसी ने
ध्यान दिया है?
ओ राजनेताओ
जनता के प्रतिनिधियो।
बहुत स्वार्थी हो
ध्यान सिर्फ मुझ पर बैठने के लिए
मेरी मरम्मत करने के लिए नहीं
अभी भी समय है/ कुछ करो
नहीं तो मैं धरती पर गिर जाऊंगी
चोट तुम्हें लगेगी, दोष मुझे मत देना
वैसे भी मैं एक टूटी हुई कुर्सी हूं।

भेंट

लनचेनबा मीतै

हम ही परस्पर
करें आदान-प्रदान फूलों का
उठा रखीं जो तलवारें
नुकीली हैं, धारदार हैं।

(मणिपुरी से अनुवाद : सिद्धनाथ प्रसाद)

मां

अशोक खन्ना 'अशोक'

जीवन भर कठिनाइयों के पहाड़
और दुखों के सागर
लांघती है वह
अंत तक उसकी सारी चिंताएं, प्रार्थनाएं
होती हैं बच्चों के लिए
सतयुग, त्रेता द्वापर हो या अब कलयुग
हो पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण
भले हिंदू, मुस्लिम, इसाई, सिख हो
नाम चाहे कौशल्या, अस्मां,
मरियम या गुरप्रीत
मौसम, हालात, सोच रिश्ते
सब बदल देता है समय
नहीं छू पाता तो बस उसे।
मां कभी नहीं बदलती
पर बच्चे....?

दोस्ती

विमल बी. राव

(मेरी दोस्त लता के लिए)

तुम्हारी मेरी दोस्ती
बीती यादों की कश्ती
वे सुनहरे पल
वे लुभावने दिन।
कैसे बीते कैसे गुजरे
न तुम्हें पता
न मुझे खबर
आज. मुड़कर देखने पर
यादों को
साकार करने पर
मिलते हैं तुम्हारे तरंग
मेरे अंतरंग
वह बेर का पेड़
वे इमली के बूटे
जिन्हें बांटा था
चिड़ियों के दांतों से
कितना सुखमय जीवन था
कितने खुशहाल पल थे
दिल के कोने में हमेशा
संजोए रखूं उन यादों को
जो, उजागर कर दे
अपने बचपन को।

वह समय दूर नहीं

वीरभद्र कार्कीढ़ोली

आएगा! वह क्षण/ वह पल
वैसी ऋतु! वैसा ही समय
दूर नहीं! नहीं है दूर।
उस आसमान की ओर देखो
देखने में कितना दूर लगता है
पर! दूर नहीं है विल्कुल
बूंद-बूंद पानी में भी प्यास छुपी है
पर कोई भी जल उतना स्वच्छ नहीं है
पानी देखने में स्वच्छ दिखता जरूर है।
बहते पानी का संबंध तो
पत्थरों के साथ सदैव रहा है
इसके बारे में जानना हो तो
पत्थरों में लगी काई से कोई पूछे
उससे अधिक और कौन जानता है
पत्थर और पानी कभी एक-दूसरे से
अलग हुए ही नहीं हैं
पानी भी पत्थर से अलग
कभी रहा नहीं है
पानी केवल पानी ही नहीं है।
काई को पता नहीं शायद
उसमें फिसलकर लोग न जाने
कितनी बार गिरे हैं
बहते हुए पानी को देख
प्यास बुझाने की चाह नहीं है मुझे
पर लगता है पानी ही प्यासा बनकर
सदैव बहता रहता है।
बस! यही जानने की चाहत रही मुझे
अभी भी पूरी तरह स्पष्ट हुआ नहीं है
स्पष्ट होगा अवश्य ही एक दिन
वह दिन दूर नहीं।
पानी स्वच्छ होगा कभी

ऐसा भी समय आएगा
बहाव पानी का रुक जाए
ऐसा भी समय आएगा।
हर किसी की सारी प्यास बुझे
ऐसा भी समय आएगा।
उस क्षण उस आकाश
उस क्षितिज को
बहुत नजदीक होने का अनुभव होगा।
पानी और पत्थरों के बीच का संबंध
कभी टूट भी सकता है
हो सकता है
उस समय पानी को पत्थर
पत्थर न लगे
हो सकता है पत्थरों को पानी
केवल पानी जैसा ही लगने लगे।
वैसी ऋतु, वैसा ही समय
आएगा फिर कभी/ वह दिन दूर नहीं
केवल दूर-सा लग रहा है फ़क़त।
(नेपाली से अनुवाद : मैना थापा आशा)

उस ओर के तीर

श्रीश्री

यह कैसा है अजीब डर?
घर पर छाया है अंधेरा!
ये कैसे सुनाई पड़ते हैं
अपस्वर?
टूट गया है तार!
वे क्या हैं
रंगों की छायाएं?
मौत और जीवन हैं!
इस रात जाओगे कहां?
उस ओर के तीर!
(तेलुगु से अनुवाद : निर्मलानंद वात्स्यायन)

प्रकृति

प्रीति

ऊंचे-ऊंचे पर्वत,
पर्वत पे हिम,
पर्वत पे अनगिनत,
चिनार के वृक्ष।
चिनार की ऊंची,
शाखों की चिलमन से,
चलकती धूप ने जब
ठंडे जल की,
धारा का हाथ थामा,
तो जल मे एक,
धातु चमकने लगी।
पहले लगा,
ये शीशा है,
पर जब हाथ बढ़ाकर
छूना चाहा तो,
वो अनगिनत जल की
चूड़ियां बनकर,
प्रकृति में कहीं
खो गई।
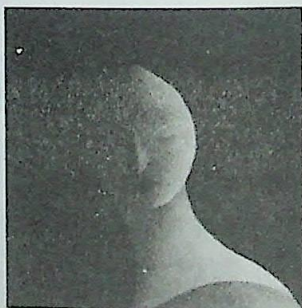
‘मैं’ के म्यान से निकलकर..

सुरेश चंद्र

माना कि वे छोटे हैं उन्हें कम आँकने का भरम मत करो।
अपने ही हाथों हारने का उपक्रम मत करो।
सूख रहे हैं पौधे रोपे हुए उनके यहां देख लो!
हक सबका है बादलों पे पूरी वर्षा हजम मत करो।

मुकाबला तो क्या, उठा के आँख भी न देख पायेंगे वो।
‘मैं’ के म्यान से निकलकर ‘हम’ होने में विलंब मत करो।
सही है कि सहने में उनका कोई सानी नहीं मिला।
ज्यादा बरसकर, उनको बाढ़ बनने हेतु विवश मत करो।

कंकाल तो बे-जान हैं, कुछ कर न पायेंगे वे आपका।
रहना पड़े कंकालों के बीच ही, ऐसा सितम मत करो।
अपने-अपने सोच का तकाजा चुका ही रहे हैं सब।
अपने हिस्से का भार बांटकर, पहचान खत्म मत करो।

खिलते समय ही, पराग-कण सब ले गयीं मधु-मक्खियां।
इस फूल के लिये, भौरों की बारात का सामान मत करो।
चल सकते हो जितना, उतना तो हर हाल में चलो।
तमाशा यह हार-जीत का, हर वक्त मत करो।

यदि जीतते बाजी सतरंज में, तो सराहते सब ही तुम्हें।
चाल बाजियों से मुहब्बत को बदनाम मत करो।
भूल नहीं पायेंगे कभी, अब तक किये उन्हें ही सुरेश!
प्रयोग की आजमाइश अब हम पर मत करो।
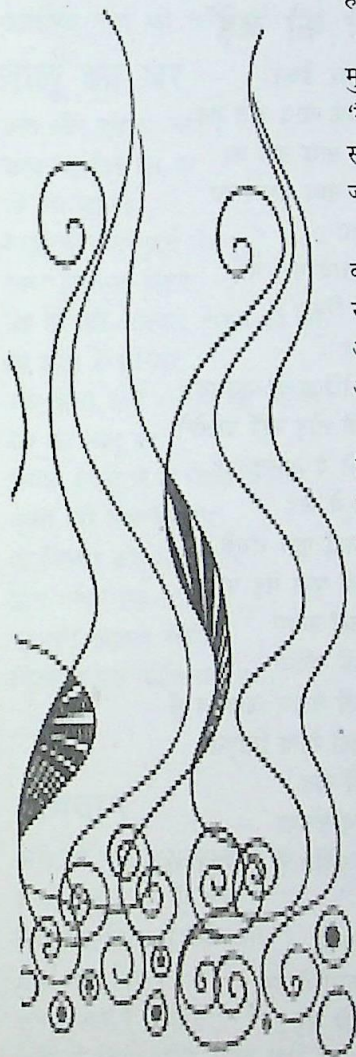
हरकतें बूढ़ी अक्लों की

भरमा नारायण कोलेकर

दूसरों को रुलाने में कुछ लोग
अपनी खुशी मानते हैं,
पत्थर का दिल
लिए हुए बदमाश
कदम कदम पे मिलते हैं।
खुद की जिंदगी तो
कब की चली गई है,
अपने फूटे नसीब का बदला
दूसरों को रुलाकर लेते हैं।
चुपचाप बैठे सब
सिर्फ तमाशा देखते हैं,
शोषितों के आंसू में ही
जैसे मजा लूटते हैं।
भोली सूरत का चश्मा
एक दिन
जरूर टूट जाएगा,
हमारा यश गान सुन के
उसमें खुद जल जाएगा।
हाऽ हाऽऽ
बुढ़ापे में भी कुछ लोग
जीने की जिद करते हैं,
सारी उम्र कुछ हासिल न हुआ
अब कुछ कर जाने की
बात करते हैं।

रिश्ते की जड़ें

भुवनेश्वर डेका

अनाज के साथ खेत का
खेत के साथ नदी का
नदी के साथ सागर का
जो रिश्ता
तुम्हारे साथ मेरा भी
ऐसा ही रिश्ता है,
नाता है।
हजार कोशिश के बावजूद
तुम कभी तोड़ नहीं पाओगे
संबंध की ये अनंत जड़ें -
टूटने से ये जड़ें
खिलेंगे नहीं फूल धरती पर
उगेंगे नहीं फल पेड़ पर
चलेंगी नहीं हवाएं
बहेंगी नहीं नदियां
उठेंगी नहीं घटाएं आकाश में
गायेंगी नहीं गाना चिड़ियां
बनेंगे नहीं खेत
कभी शस्य-संभवा
शब्द के अतीत हैं ये रिश्ते-नाते
आओ,
मिट्टी बनकर
मजबूत करते हैं हम
रिश्ते की ये जड़ें।

कालीपद पंडा की कविताएं

बालू का घर

स्नेह और ममता/ नहीं है
कांच या बालू का घर
जो गिर जाएंगे
स्वार्थ के हीन मुहूर्त में
ध्वस्त-विध्वस्त होकर
यह तो चिर शाश्वत, अमृत का झर
जो झरते हैं झर-झर
और झरते रहेंगे / चिरकाल निरंतर।
उम्र का बालू घर
अथाह सागर में/हो जाता है लीन
रहता नहीं नाम निशान
तो निर्माण करो कीर्तिस्तंभ
प्राण पखेरु उड़ जाएगा
पर तुम झटकते रहोगे
चिरकाल इस कीर्तिस्तंभ पर।

बागवान

नारी को गुड़िया मानकर
वे लोग चल रहे हैं/ इन्हें
निर्विकार चित्त में दबोचकर
मगर एक दिन
समझ जाएंगे वे लोग
नारी के बिना सृष्टि संभव नहीं है
वह जन्म देने वाली, पालन करने वाली
और संहार करने वाली भी है
तो उसी दिन
नारी को मिल जाएगा देवी का सम्मान
वे लोग फिर बन जाएंगे बागवान।

(ओड़िआ से अनुवाद :
डॉ. विजय कुमार महांति)

आदमी-आज

रामेश्वरी क. मानधनियां

जिंदगी के हर मोड़ पर, देखा जब मैंने आदमी
गम और जुल्मों के मारे, टूटता जा रहा आदमी
बेईमानी-ईमान के हर मोड़ पर
पल रहा है आदमी
बन रहा घर का ही दीप, हर सहारा बेसहारा आदमी
मुड़ गया पहचान से हर मोड़ पर,
साथी-सगा आदमी
भूख-गरीबी मजबूरी लिए,
भाई का ही गला काटता आदमी
हर किसी के खून का प्यासा
व्यथा-वेदना से भरा आदमी
अमानुषी अत्याचारों का जगहर पीकर
खुद-कुशी कर रहा है आदमी
कानून के काले कारनामों से बहक
नारों की मशालें जला रहा आदमी
आज आदमी से कीमती उसका लिबास
अंदर किसने देखा कैसा है आदमी
मंजिल तक पहुंचने के लिए अब,
कौन किसका हम सफर है आदमी
हर रास्ता उलझा हुआ अब,
बसेरा करे किस मोड़ पर आदमी
आदमी ढूंढ़ता फिर रहा हूं,
मिलेगा किस मोड़ पर आदमी।

इन्दिरा 'शबनम' की कविताएं

मामूली

जिन्हें हम
कुछ नहीं समझते,
कोई भी
मूल्य नहीं देते, जो बेहद कम
बस/ मामूली से होते हैं
वही कभी-कभी
हमारा सुख
छीन लेते हैं।
हमारा सब कुछ
हर लेते हैं।
बड़े/ खतरनाक
होते हैं।
वैसे चन्द
मामूली लोग
जिन्हें हम/ भूल से
मामूली सा
समझ / बैठते हैं।

अपने ही हाथ

तुम कितनी
चीलों के
हमले से बच गई?
तुम कितने भेड़ियों से
बच निकली,
और तुम्हें
पता ही न चला।
शतरंज की
बिसात का एक मुहरा
बनते-बनते भी
तुम मुहरा न बनी।
यह सब
तुम्हारे साथ ही
क्यों हो रहा है?
यह सुरक्षा कवच
किस ने पहन दिया?
क्या तुम
उन हाथों को
नहीं जानती?
अरे! भई
वे तुम्हारे
अपने ही
हाथ हैं!!!

मुस्कान

एक मुस्कान
बांटने में,
क्या हर्ज है?
तुम मुस्काये
सामने वाले के
होंठ,
बरबस ही सही,
मुस्करा उठे।
चांदनी खिल उठी,
उसके चेहरे पर।
एक दीपक,
जगमगा उठा।
उसके भी,
अधरों पर
तुम्हारी एक
अकेली मुस्कान ने,
अनेक मुस्कानों को
जनम दिया...।

तस्वीर

वह औरत हताश,
मायूस हो कर,
माथे पर दोनों
हाथ रखकर,
उकडू बैठ गई
बदहवास।
उसके सारे सपने
तहस-नहस
टूटे-टूटे थे।
टूटी पूरी ही पूरी वह।
चित्र उदासी से, भरा
कालिमा से भरा हुआ था।
उदास-उदास सी,
निराश-निराश सी,
वह स्त्री।
किसी ने उस चित्र में
अपने बुर्श से।
उगता हुआ सूर्य
इस प्रतीक से
नारंगी रंग भर दिया।
चित्र उदासीनता-नीरसता
का रंग उतार कर,
आशा की किरणों से
जगमगा उठा...।

लालित्य ललित की कविताएं

नई बस्ती

ऐसा क्यों होता है
मृत्यु को करीब देख
देह को छोड़ना
नहीं चाहता मन
रे मन
चल उस ओर
जहां है एक
नया नील गगन
नई बस्ती
और यह रहा तुम्हारा
आवंटित नंबर
मन देखता रहा
शरीर खामोश पड़ा है
आसमान में
चमकी बिजली/ यानी
आपका पंजीकरण हो
चुका है।
नेक्स्ट प्लीज!

आखिर क्या पाया

इतना कमाया
खुद को थकाया
अपने को पकाया
आखिर क्या पाया
बैंक-बैलेंस
तीन मंजिला
आलीशान मकान
सौ तौले सोने का हार
डेढ़ किलो चांदी की पायलें
चार लग्जरी कार
तीन बहुएं तीन बेटे
समाज में इज्जत
छह पोतों का संसार
क्या ले पाया अपने साथ
कुछ नहीं
ना परिवार/ ना दौलत
ना सोना/ ना चांदी
बच्चों ने कर लिया बंटवारा
अपना-अपना हिस्सा लेकर
हो गए फुर्र
और पिता जी की
हार लगी तस्वीर
एक खोखले डिब्बे में
कोने में पड़ी है
अजब है दुनिया
बड़े अच्छे थे लाला जी
और बच्चे?

घर की जीनत

बेटियां
शुरु से मां-बाप की
सगी होती हैं
और बेटे
बहू की जुल्फों के गुलाम
जिसके आते ही वे
हिलाने लगते हैं दुम
उन्हें मां-बाप का
आशीर्वाद भी
डंक लगता है
और पत्नी का प्यार
अद्वितीय, अद्भुत
परीलोक की प्रमुख परी का
प्रसाद!
धन्य हैं वे मां-बाप
जिनके घर जन्मीं बेटियां।

अनुसंधान

शराब
आदमी पीता है
या शराब आदमी को
इसी अनुसंधान में लगे
लोग
पिछले दस वर्षों में
तीन करोड़, बयासी लाख
चार सौ पिचहत्तर रुपये की
शराब पी चुके हैं
लेकिन अनुसंधान जारी है
क्या आप भी
शोध करना चाहते हैं
तो निकटवर्ती
सरकारी शराब की दुकान
पर जाएं
अपना पंजीकरण कराएं।

खूबसूरत बहाना

गोलगप्पे को
चटकारती हमारी
भारतीय महिलाएं
अत्यंत भीड़ भरे
बाजार में

खुद को खो देना चाहती हैं
घर के टंटे से दूर
रहना चाहती हैं
यानी फुर्सत के दो चार घंटे
जहां नहीं हो चिल्ला-पौं
पति महाशय की पुकार
ससुर की बार-बार
चाय की डिमांड
चतुर पत्नियां सब
जानती हैं
इसलिए निकल जाती हैं
बाज़ार-हाट
ताकि तरोताज़ा हो सकें
ताज़ा दम हो सकें
वल्लाह! क्या बात है?
क्या सोच है
इस सोच के आगे
भारतीय पुरुष समाज
बेबस है
और आप जनाब!
आप भी तो इसी समाज
का हिस्सा हैं?

अजीब समस्या

बिजली-पानी में
जूझता आम शहरी
इसी समस्या में पिसता
हमारा किसान
हमारा भविष्य
छायादार वृक्षों के नीचे
पढ़ते नौनिहाल
बंक करते कालेज से छात्र
'मॉल' में नज़र आते हैं
उपले थापती ग्रामीण बालाएं
टी.वी. पर देखती हैं
"के दिखावे से"
बोलती हुई रोटी बनाती हैं
और अति शहरी
रेस्टोरेंट में जाती हैं
वही खाती हैं
यानी अपने को
अपने आप से छिपाती हैं
क्या करें भाई साहब
वक़्त ख़राब है
'मित्तल साहब ने सुबह की
सैर करते हुए
सतीश अग्रवाल से कहा।"

बस आप धन्य हैं

शरीर को सजाती महिलाएं
आकर्षण में डुबाती महिलाएं
चांद पर जाती महिलाएं
लोक सभा के पद पर
राष्ट्रपति के सर्वोच्च शिखर पर
आसीन महिलाएं
पुरुष वर्ग के लिए चुनौती हैं
सबक है
कि उनका भी कोई वजूद है।
जिसे नकारा नहीं जा सकता।
समझे! या गिनवाना शुरू करूं
इंदिरा गांधी
सरोजिनी नायडू
लता मंगेशकर
बछेंद्री पाल
रानी लक्ष्मीबाई
किरण बेदी
हताश पुरुष समाज ने
कहा - बस आप धन्य हैं!

सभ्य असभ्य

ऐसा क्यूं होता है
जब शरीर को खिलौना
समझ लिया जाता है
अचानक स्त्री का शरीर
उपभोक्ता की
वस्तु हो जाता है
प्रकाशक के लिए
वह न्यू-कमर
लेखक के लिए
उसका संग
शोध की अनिवार्य वस्तु
आकलन करता मन
कहीं बेमानी लगता है
जब उसकी नज़र में
स्त्री केवल
बाज़ार का केंद्र होती
या उपभोग की वस्तु!
वाह रे
मनुष्य अपनी हदों
को पार कर
सभ्य खाल में छुपाए
बैठा है अपने संग एक
राक्षस
जी हां! यह कोई नई
बात नहीं
जब पिता, भाई
रिश्तेदार तक
बन गए हों कुकर्मी
तो इन सभ्य लोगों को

कहां तक पूछें!
अजीब है दुनिया
अजीब हैं लोग
नाटक करते साले किसी
भांड़ से कम नहीं।

व्यापारी

अपने धंधे को
चमकाता है
अफसर को देता है रिश्वत
नोटों की गड्डियां
काजू-बादाम की तश्तरियां
शराब की सौंदर्ययुक्त
आकर्षक नव यौवनाएं
अफसर खुश हैं
टेंडर मिल जाता है
बीवी खुश है
पति की कमाई से।

मां

सुबह से रात तक
परिवार को पालती है
खाना-घर, रिश्ते-नाते
पड़ोस को निभाती है
पति की सुनती है
जली-कटी
मगर सहती है
सास-ससुर के नख़रे
देती है परिवार को दिशा
संस्कार
वाकई मां इस पृथ्वी की
सर्वोत्तम इकाई है
जिस पर गर्व किया जा सकता है
मां तुझे सलाम!

बहन

बहन भाई को हर
मुश्किल से बचाती है
पिता की डांट से
मास्टर की फटकार से
तितली को
भाई की हथेली पर
कोमल भावना से
रख देती है
भाई, बहन के इस प्यार को
सहेज लेता है
ज़रूरत पड़ने पर बहन की
मदद करता है
मां-बाप, बहन-भाई के
प्यार पर मुग्ध हैं।

नवविवाहिता

पिता का घर छोड़
ससुराल में आती लड़की
वह पाठक होती है
जो किताब के भीतरी
तथ्यों से
अपरिचित होती है
जैसे-जैसे किताब को
पढ़ती है
परिवार को समझ जाती है
जब किताब पूरी पढ़ लेती है
तो जान लेती है
कि यह तो वही है
मायके के बगल वाली
खन्ना साहब के परिवार की -
कहानी/ लेकिन एक
अच्छी नवविवाहिता
ठान ले तो
परिवार को संवार देती है
अपने कर्म से/ अपने धर्म से
और अपनी सेवा से
जिसे लड़की भली-भांति
जानती है
कित्ती अच्छी बहू आई है!
सुनकर दुल्हन
शरमा गई!

रश्मि रमानी की कविताएं

बच्चे

एक दिन खिलेगी चमकदार धूप
और दुबककर बैठी चिड़िया
झटककर अपने भीगे पंख
उड़ जाएगी फुर्र से
पेड़ की फुनगी पर धूप सेंकते
चहाचहाएगी खुशी से
एक दिन दुनिया बन जाएगी दरवाज़ा
और चली आएंगी अनगिनत इच्छाएं बेधड़क
सर्द रात की परतों में कसमसाती नींद
महसूस करेगी राहत का कुनकुनापन
धीरे-धीरे पैर पसारेंगें आंखों में अच्छे सपने
सहमी हुई हवा में होगी हलचल
मुस्कुराएंगी समंदर की लहरें
और क्षितिज से टकराकर गूंज उठेंगी
हमारी सोयी हुई प्रार्थनाएं
नई दुनिया की खुली आबोहवा में
पृथ्वी बन जाएगी गेंद
जिसे किलकारियां मारते बच्चे
लुढ़काएंगे अपने नन्हें हाथों से।

चाहत

मैं बनना चाहती हूं
एक कोरा कागज़
जिस पर लिखी जा सके
खूबसूरत-सी कोई कविता
मुझे बदल दो खिड़की में
आ सके जहां से ढेर सारी ठंडी हवा
और खूब सारी कुनकुनी धूप
मेरे लिए
बुरा नहीं होगा दरवाज़ा बनना भी
ताकि सुन सकूं ज़िन्दगी की दस्तक़
किनारा बन जाना भी तो
कोई कम-किस्मत नहीं होती
लहरें चूमती रहेंगी सदा /किनारे के कोमल होंठ
स्वीकार है मुझे सौ-सौ जन्म लेना
जाना चाहती हूं मैं उस समन्दर में
जहां मैं होऊंगी अधखुली सीपी प्रतीक्षारत
और तुम!
स्वाति नक्षत्र की उम्मीदों से भरपूर
अमृत-बूंद।

रहस्य

औरत जानती है वह जगह
जहां से शुरू होता है धूसर वसंत
उसी को पता है
कहां से फूटता है लावा
और बता सकती है वही
सन्नाटे का मतलब
बहुत मुश्किल है जानना उससे
जादुई डिबिया का राज़
तब्दील हो सकती है यह परछाई में
या सतह पर तैरती उसकी देह
अचानक अदृश्य हो सकती है
अतल गहराई में
सब जानने समझने के बावजूद
नहीं बताती किसी को भी
कि कहां से शुरू होती है वह
और कहां ख़त्म।

कहानी

रंगम पेटी

जयंती पापाराव

दादा जी का कर्मकांड समाप्त हुआ। कर्मकांड की समाप्ति के बाद रंगून की पेटी सबकी आंखों के सम्मुख चम-चम चमकती हुई, कलात्मक रूप से विराजमान थी। मन में अतीव उत्सुकता के बावजूद हर कोई उस पेटी के बारे में, मुंह खोलने से सकुचा रहा था। दादा जी के बारे में बातचीत करते हुए सभी लोगों की दृष्टि बार-बार उस पेटी पर जा टिकती थी।

मेरे पिता सबके चेहरों का सूक्ष्मता से अध्ययन कर रहे थे। फिर कुछ देर निहारकर अपने छोटे भाई की ओर उन्मुख हुए- भाई! उस रंगम पेटी को खोलो। उन्होंने चाबी का गुच्छा चाचा जी की ओर बढ़ा दिया। मेघों से आच्छादित आकाश में जिस तरह चंद्रमा झांक उठता है उसी तरह सबके चेहरे प्रसन्नता से दमक उठे थे।

दादा जी के एक मित्र रंगून साहब ने उस पेटी को हमें सौंपा था। वे हमारे ही गांव के रहने वाले थे। बर्मा में खूब पैसा मिलता है। यह कहकर उनके रिश्तेदार उन्हें अपने साथ रंगून ले गए थे। उनका शरीर बलिष्ठ था अतः बड़े आराम से उन्हें आरा मशीन में काम मिल गया। चार वर्ष में वे गांव एक बार अवश्य आते थे। खाकी निक्कर, लाल रंग की बनियान और रबर के जूते पहनकर बड़े ठाठ से घूमा करते। उनकी छोटी-सी दाढ़ी बड़ी मनमोहक थी। यदि कोई उनसे उनका नाम पूछात तो 'रंगून साहब' कहकर ही अपना परिचय देते और जब काम का ज़िक्र करते तब वे अपने आपको आरा-मशीन का मालिक बताते। गांव के लोग यह जानकर उन्हें बड़ा आदर देते थे क्योंकि वे अपनी मेहनत के बलबूते पर ही इतने बड़े आदमी बने हैं।

जब भी वे गांव आते तब दादा जी की छत्रछाया में ही रहते क्योंकि दादा जी से उनकी बहुत पटती थी।

ऐसे रंगून साहब ने जब सुना कि बर्मा में युद्ध छिड़ने वाला है तो घबराकर उस खूबसूरत पेटी के संग गांव आ पहुंचे।

हमारे गांव में उनकी तीन एकड़ भूमि थी किंतु जब वे रंगून में थे तब आस-पड़ोस की जमीन वालों ने उनके खेत को कुतरते-कुतरते, ढाई एकड़ में बदल दिया था। आरा मशीन लगाने के लिए रुपयों की आवश्यकता है, कहकर रंगून साहब ने अपनी जमीन को बिना किसी दूसरे को बताए अनेक लोगों के पास गिरवी रख दिया। इस तरह उन्होंने दस वर्ष बिता दिए।

जब उनके पास फूटी कौड़ी भी न बची, तब वे बड़ी मुश्किल में पड़ गए। एक-एक दिन बिताना मुश्किल हो रहा था। आरा मशीन लगाने वाला 'साहब' मजदूरी तो नहीं कर सकता न? और तो और जो धोखाधड़ी की थी, उसके कारण भी उनकी जान सांसत में थी। उन्हें भय सताया करता था कि कहीं भी, कोई भी व्यक्ति, किसी भी क्षण उनको चाकू भोंक सकता है।

इन्हीं मुश्किल भरे क्षणों में, एक दिन जब दादाजी गांव से बाहर थे। तब उन्होंने उस खूबसूरत रंगम पेटी को हमारे घर भिजवा दिया। गांव के लोग कहते हैं कि उन्होंने दादा जी से इतना पैसा उधार लिया था जिसका कोई हिसाब नहीं था। अंततः उन्होंने आत्महत्या कर ली।

रंगम पेटी छह फुट लंबी , तीन फुट चौड़ी और तीन फुट ऊंची थी। बाहर से वह एक ही पेटी दिखाई पड़ती थी किंतु भीतर से, दो पेटियां एक जोड़ी के रूप में स्थित थीं। पेटी के सामने उड़ते हुए पक्षी और आसमान जैसे वितान था, कलात्मक अलंकरण। भव्यता और सुंदरता में उसकी कोई मिसाल न थी। भीतर ही भीतर, अनेक अलमारियों से युक्त वह कलाकृति सहसा मन को मोह लेती थी। चोर अलमारी इस तरह धंसी थी कि उसका पता केवल पेटी के मालिक को ही होता था। जिसमें आभूषण, रुपयों की गड्डियां और दस्तावेज आदि छिपाए जा सकते थे। उस पेटी का ढक्कन उठाने पर उसमें तीन आईने दिखाई पड़ते थे और उसकी बगल में पक्षियों के चित्र, जो बर्मी शैली से नक्काशी किए गए थे, उफ...सचमुच अत्यंत सुंदर कलाकृति थी।

जब से पेटी हमारे घर आई, तब से हमारे घर की सुंदरता में चार चांद लग गए थे और दूर-सुदूर गांव के लोग उस पेटी के दर्शन करने आया करते थे। जिसने भी देखा, उसने उसकी भव्यता को सराहा और जिससे भी मिलता 'रंगम पेटी' का बखान करता। उसकी विशालता, उसकी कलात्मकता की चर्चा लोग, मुक्त कंठ से किया करते थे। तब मेरा हृदय प्रफुल्लित हो उठता। इस प्रकार हमारा घर, उस क्षेत्र में, लोगों के लिए प्रदर्शनशाला बना रहा।

काफी दिन बीत गए।

दादा जी के बारे में, गांव के लोग बढ़-चढ़कर बातें किया करते थे, उनकी इज्ज़त किया करते थे। लोग कहा करते थे कि खेती-बाड़ी में उनका कोई जवाब नहीं, सोना पैदा होता है सोना। पशु संपदा तो गिनती नहीं बनती। सोना, चांदी, नोटों की गड्डियां संपत्ति के कागजातों को उस रंगम पेटी में रखकर उस पर सोकर सर्पराज के मानिंद उसकी रक्षा किया करते हैं। हज़ार लोगों की हज़ार बातें। रंगम पेटी अब स्वर्ण की पेटी बन चुकी थी। दादा जी हमेशा अपने में लीन रहते थे जिसके कारण, ये बातें उनके कानों तक नहीं पहुंचीं।

घर पर मेरे पिता की कोई खास भूमिका नहीं थी क्योंकि सारा काम-काज, सारी खेती-बाड़ी दादा जी की देख-रेख में होती थी। पिता को इससे कुछ लेना-देना नहीं था। यहां तक कि दादा जी ने क्या कुछ जमा कर रखा है? क्या-कुछ छिपा रखा है, उन्हें कुछ पता नहीं। पिता जी को शहर में अच्छी नौकरी मिली, किंतु दादा जी की इच्छा उन्हें भेजने की न थी। अतः वे रुक गए और गांव में ही शिक्षक बनकर गांव के बच्चों को पढ़ाने लगे। वे बड़े आज्ञाकारी थे और दादा जी का बताया हुआ हर कार्य बड़ी लग्न से कर दिया करते। इस प्रकार बिना किसी चिंता के उनका जीवन अपनी गति से बीत रहा था।

मेरे चाचा अच्छी नौकरी पाकर शहर चल दिए थे तथा साल में एक-दो बार आते और मौज करते हुए, कुछ दिन बताया करते थे।

रंगम पेटी के बारे में लोगों की धारणाओं को सुनकर, अब वे अक्सर आने लगे थे। लेकिन रंगमपेटी में आखिर क्या-कुछ संजोया गया है- यह पूछने की उनकी हिम्मत न थी।

चाचा जी ने चाबियों का गुच्छा हाथ में लेकर, दादा जी की आत्मा को मन ही मन प्रणाम किया। खुशी के मारे उनके हाथ कांप रहे थे। उन कांपते हाथों से उन्होंने रंगम पेटी को खोला। पेटी में सामने की ओर लगे छोटे-छोटे आईनों में मेरी चाचियां अपना-अपना मुंह देखकर लिलक रही थीं और अपने

चेहरे पर छाई आतुरता को दबाने का असफल प्रयत्न कर रही थीं।

उत्तरीय और धोतियों के ऊपर, दादा जी का पत्र जो कि हरडे की स्याही से लिखा था; उस पत्र को उठाकर चाचा जी ने पढ़ा - 'मेरी सुशील और सुगृहिणी बड़ी बहू को तुम्हारी मां द्वारा संभालकर रखी रेशम की साड़ी दे दी जाए। छोटी बहुओं को मेरा आशीर्वाद।' यह सुनकर चाचियों का चेहरा उतर गया। उसके बाद दूसरा कागज मिला। जिसमें लिखा था- 'वर्षा नहीं हो रही है। फसल नहीं पकी। इस बार तो लागत भी वसूल नहीं हुई। बड़ा वेंकन्ना से तीन सौ रुपए उधार लिए थे, उन्हें चुका देना।''

उधार के अन्य कागज निकलेंगे- यह सोचकर सब लोगों के दिल धड़क रहे थे। लेकिन रंगम पेटी की चोर अलमारी में सोने के आभूषण माल-असबाब के कागजात अवश्य मिलेंगे। इस आशा के भाव सबके मुख पर ऐसे चमक रहे थे जैसे अंधेरी रात में नक्षत्र।

चोर अलमारी से छोटे से बंडल को निकाला गया। वे कागज बांड पेपरों की भांति मोटे थे। चाचा ने उन कागजों को मन ही मन पड़ा। यह देखकर, सब लोग खुशी से चहकने लगे थे और उन कागजात को पढ़कर सुनाने की याचना करने लगे। चाचा जी सब लोगों की ओर देख-देख कर ऐसे उछल रहे थे जैसे उनके हाथ कुबेर का धन लग गया हो। उनकी इस हरकत को देखकर चाचियां आग बबूला हुई जा रही थीं। उन्होंने पढ़ना आरंभ किया।

बंधुओ। धन के मद से या जाति भेद के अहंकार से यदि तुम्हें कोई एक वचन से बुलाए तो तुम भी उसे एक वचन में ही संबोधित करना। यदि शब्द के अंत में 'रे' का प्रयोग करे तो तुम भी वैसा ही करना। धन की शक्ति और उच्च कुल का अहंकार यदि तुम्हें छोटा बनाने का यत्न करे तब तुम यह अधिकार उन्हें कभी न देना। ऐसे वर्चस्व के लिए, उसके उन्मूलन के लिए मेहनत और संघर्ष के साथ प्रतिरोध के नए-नए तरीके ईजाद करना और उस चुनौती का सामना करना।

अरे मित्र संबोधित करने के लिए तू, तुम, आप जैसे अनेक शब्द प्रचलित हैं। इन शब्दों को भूलकर एक नए शब्द का आविष्कार करना जिसमें समानता और अपनत्व की भावना हो। संबोधित करने के लिए हमारे समाज में यदि धन-दौलत की 'बू' आती हो तो ऐसी भाषा को सुधारने के लिए जमकर संघर्ष करना। ''बस-बस। अब शांत हो जाओ।'' हमारी चाचियों ने गगनभेदी निनाद किया। मेरी दृष्टि चारों ओर घूम रही थी। जिस चेहरे पर भी मेरी नजर जाती उस चेहरे का रंग उड़ा हुआ पाता।

सोने के आभूषण, रुपयों की गड्डियां, जमीन जायदाद जैसी चीजें भरी होंगी- ऐसे चेहरे जो कि आशा से भरे थे, वे अब कुम्हला गए थे।

जग-मग, चम-चम चमकती, कला और नक्काशी से विभूषित - कितने ही वर्षों से कितनों को आकर्षित करती हुई रंगम पेटी अब शव पेटिका का रूप धारण कर चुकी थी।

आज भी दादा जी की रेखांकित करती हुई वे पंक्तियां मेरे मन में हिलोरें लेती हैं।
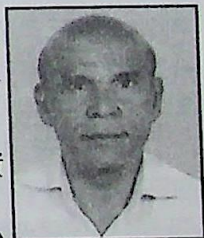
(तेलुगु से अनुवाद : सत्यनारायण राव)

सूर्यास्त की वेला

आर. चूडामणि

गोमतियम्माल के बूढ़े चेहरे पर बचपन लौट आया है। सड़सठ साल में आंखों में फ़िर से रोशनी लौटी। पैरों में एक तेज़ गति थी। जल्दी-जल्दी अपनी अत्यल्प जायदाद को काले ट्रंक की पेटी में रखते हुए तथा बाहर निकालते हुए हर मिनट के लिए चार बार 'पैक' करके उसके सौंदर्य को देखनेवाले हड्डीदार हाथों में एक मीठे भविष्य को प्राप्त करने के लिए उतावला मन था। इधर-उधर दांत विहीन हंसी में स्पष्ट दिखाई देने वाली ख़ुशी नज़र आई।

वह अपने घर फिर से लौट जाने वाली है।

X X X

प्रार्थना कक्ष में सफ़ेद बालों से युक्त लोगों की भीड़ थी। गंजे सिर, कांट्रेक्ट चश्मे या उसके लिए भी भाग्य न होने वाली, छोटी, नज़र्द क से देखने की कोशिश करनेवाली, अंधी होने वाली आंखें थीं। मन में हज़ारों रहस्यात्मक दुनिया के गरजने पर यंत्र की तरह 'एरु मइलेरि विलैयाडुम मुगम ओण्डु' आदि कोई भक्ति गीत होंठों में गुनगुनाते समय वह सोचा करती थी, ''वह बोलती है तो इसका दिमाग कहां गया? यदि यह ऐसे बताता कि मेरी मां मेरे साथ ही रहेगी! तो क्या वह सिर तोड़ देगी?''

''ज्यादा से ज्यादा मैं क्या मांगती हूं? दो वक्त का खाना, मान को बचाने के लिए साल में दो साड़ियां ही। बेटा कहता है कि उसके लिए भी उसके पास पैसे नहीं है। लेकिन पति-पत्नी दोनों कमाकर चार दिनों में एक बार पार्टी देते हैं न?''

अपनी सौतन की बेटी नहीं है, अपने ही गर्भ से जनमी बेटी। ऐसे बोली थी जैसे केले के भीतर सुई लगाती हो, ''मैं क्या करूं मां? यदि तुम्हारे भाई नहीं है। तुम्हारे मां बाप को संभालने का फ़र्ज़ तुम्हें ही होता है क्या? जो भी हो तुम तो उनकी बेटी हो न? तुम्हारे दामाद ने बता दिया कि उन्हें यहां से निकालने का काम करो।'' इस तरह पति के सिर पर इलज़ाम लगाती है। मुझसे ज्यादा उसके पिताजी उस पर जान न्यौछावर करते थे मुड़ मुड़कर देखते हुए जब वे वहां से निकल आए तो मेरा मन उबल उठा कि ऐसी राक्षसी को जन्म देने वाले पेट को काटकर मर जाना था।

''स्त्री होने से सबके मन में एक कड़वाहट होती है। मुझे पूछे तो बुढ़ापे में साथी को खो देने के बाद अकेले मर्द होने के बजाय अकेली स्त्री होना ही बेहतर है। विधवा स्त्री को बेटा या बेटी अपने घर में स्थान देंगे। एक स्त्री कई तरह से खुद को अपने परिवार के साथ चिपका लेती है। लेकिन पत्नी को खोनेवाला बूढ़ा तो अनाथ बच्चे की तरह स्तंभित हो जाता है। अपने घर में ही अकेला हो जाता है। उसके लिए आवश्यक बातों को ध्यानपूर्वक करके देनेवाली ज़िम्मेदारी या सहिष्णुता किसी में भी नहीं होती। यदि कोई पेन्शन लेते हैं तो उनको गाली देते हुए घर में खाना देंगे लेकिन मेरी तरह कुछ भी न होने वाले को तीनों बेटे बारी-बारी से गंद की तरह खिलवाड़ करके निकाल देंगे।

''बच्चे होकर भी इस तरह विश्राम घर की छाया में रहनेवालों को देखकर लगता है कि वे सब भाग्यशाली हैं जिनके बच्चे नहीं हैं। लेकिन बेचारा मन उन हरामखोरों के बारे में सोच सोचकर गलते हुए जैसे फिर-फिर कह उठता है

"किसी तरह, बच्चों के बाहर निकाल देने पर भी मुझे यह खुशी है कि हम पति-पत्नी साथ ही हैं। हे मुरुगा! इसी तरह हम दोनों को साथ ही ले जाओ।"

"पळनि पहाड़ में बसनेवाले मुरुगा आ जा "

X X X

लंबे भोजन कक्ष में भोजन के हरे पत्ते के सामने प्रतीक्षारत सहिष्णुता की मूर्तियां। भोजन के साथ अंदर जानेवाले आंसू से भरे कौर।

शाम के समय बाहर के बरामदे में आराम से बैठते हुए- इस तरह बैठनेवाली बात को एक फ़र्ज के रूप में- जीवन की सांझ में बैठते हुए रात की प्रतीक्षा करने वाले लोगों की तरह - आकाश को घूरकर देखनेवाले विरक्ति से भरे चेहरे थे। आंखों में मरने वाले सपने थे।

सब महसूस होनेवाला अकेलापन नहीं है। वे लोग असहाय अवस्था में आश्रय देनेवाले विश्राम घरों के प्रति कृतज्ञता से पूर्ण थे। अपने निजी विचार को एक तरफ़ रखते हुए विश्राम घर के काम में यथासंभाव भाग लेते हुए सहायता करनेवाले कर्मयोगी थे। विश्राम के समय पढ़कर विचार को बढ़ाने वाले बुद्धि के प्यासे थे। ये दूसरों को अपने ज्ञान की बातें पढ़ाते हुए खुद से दुर्बल लोगों को संभालते हुए अंत तक जीवन से मिलकर चलनेवाले निर्माणकारी प्रवृत्तिवाले थे।

X X X

गोमतियम्माल में ये सब गुण मौजूद हैं।

सड़सठ साल की उम्र में फल की तरह उनका चेहरा था। उसमें फलों की मिठास थी। मद्धिम लंबाई के अनुरूप पतली देह। गेहुंए रंग के माथे पर सफेद रंग की दिखनेवाली भस्म की रेखा। पुराने ज़माने के 'कोडाली मुडिच्चु' (जूड़ा बांधने का एक तरीका) की तरह सफ़ेद बाल।

प्रथम प्रहर के मुर्गे के साथ जागते हुए विश्राम घर के सामने कोलम लगाती थी। रसोई के लिए सब्ज़ी काटकर देती थी। यदि कोई बीमार पड़ जाए तो नर्स बन जाती थी। इस तरह की कई बातें थीं। फिर भी मन इनमें से किसी में भी नहीं है। वह अपने घर और बेटे के चारों ओर ही घूम आता था। बहुत समय के बाद तपस्या करके जन्म लेनेवाला एक मात्र बच्चा था वह बेटा। पति के गुज़र जाने के बाद खूब मेहनत करके, तन को गलाकर, खुद भूखी रहकर उस बेटे को पढ़ाकर बड़ा करके...बहुत पुरानी कहानी थी, असंख्य परिवारों में घटित होकर सुनते हुए उबानेवाली यह कहानी ऐसा प्रश्न खड़ा कर देती है कि "ठीक है, नया क्या है?"

बहू आई। सास अनचाहा बोझ बनी। बूढ़ी को खिलाए जानेवाला दो वक्त का खाना पर्स में बड़े पत्थर की तरह भारी पड़ा। बच्चा होने के बाद बहू ऐसे उछलने लगी जैसे बूढ़ी के कारण घर में जगह की कमी ही हो गई हो। उसने बताया कि सास को तुरंत घर से बाहर चले जाना चाहिए। सहमति होने या न होने पर भी बेटा पत्नी का विरोध नहीं कर पाया। इसका नतीजा यह था- विश्राम घर में माता।

"पता नहीं क्या खाता है, बेचारा, शेखर को पेट में अल्सर की गड़बड़ी है। बिना तीखी चीज़ों को ही सावधानी के साथ खिलाना है। क्या उसकी बीवी को वह सब करने के लिए समय होगा? बोल रही थी कि आमदनी काफ़ी नहीं है, खुद नौकरी पर जाना है। ऐसे जाएंगे तो बिलकुल उसे संभालने

के लिए समय नहीं होगा। हुम, ईश्वर ही मेरे बेटे की रक्षा करें।" इस तरह बोलते हुए 'पोन्नार मेनियने...' के साथ प्रार्थना को ज़ारी रखते समय उसकी आंखों से आंसू बहते थे।

स्त्री पुरुष दोनों के लिए स्थान देनेवाला वह विश्राम घर अब बुढ़ापे की रेखा में खड़े होते समय लिंग भेद की विकृत लज्जा गायब होते हुए 'मनुष्यता' गंभीर योग्यता सबको मिल जाती थी। आत्मीय मित्रों के रूप में दो स्त्रियों को मिलाकर मुरुग भूपति के साथ भी गोमतियम्माल अपना मन खोलकर बातें करती थी।

गोमतियम्माल की कहानी को ऐसे ही पुल्लिंग रूप में पलट देने पर भूपति की कहानी मिलेगी। ज़रा देरी से बच्चा होने के बाद उन्होंने अपनी पत्नी को खो दिया। उनका भी पुत्र ही था। मां और बाप के रूप में रहकर ममत्व बरसाते हुए उन्होंने उसे बड़ा किया। यौवन, पत्नी तथा बच्चे आने के बाद उसने उन्हें घर से निकाल दिया।

"मैं पेन्शन को देकर ही खाता था।"

"ये रुपए उनके खाने के लिए ही कम हैं। इससे ऊपर कपड़े, फिर बीमार पड़ने पर चिकित्सा का खर्च - इन सब नुकसानों को कौन झेलेगा? इसके साथ, यदि ये किसी दिन बाथरूम में गिरकर कमर की हड्डी तोड़ देते तो, उम्र भर इन्हें लिटाकर सेवा कौन करेगा? क्या इनके बेडपैन उठाने के लिए ही मेरे मां-बाप ने मुझे जन्म दिया है? बहू ने ऐसा पहले ही सही सलामत मुझे घर से भगा दिया!"

हंसी और रुलाई के साथ दुख हृदय में भरते हुए आंसू छलकते थे।

"आंखें पोंछ लीजिए भूपति जी। यदि हम रोएंगे तो आंसू पोंछनेवाले कोई और नहीं हैं। हमें ही खुद पोंछ लेना चाहिए।" इस तरह गोमतियम्माल बोलती थी।

सत्तर साल के दुर्बल शरीर को हिलाते हुए एक बार रोते ही दूसरे क्षण भूपति खुद को संभालते थे।

'मेरी बहू की बातें भी ठीक ही हैं। ऐसे ही कई बूढ़े लोग फिसलकर नीचे गिरते हुए हड्डी तुड़वाकर ज़िंदगी भर खाट पकड़ लेते हैं न ....

दोनों अपने परिचितों में ऐसे खाट पकड़नेवाले की कहानी को एक दूसरे के पास बताते हुए कांपते थे।

"मैं उस सेंदिलांडवन से यही प्रार्थना करता हूं कि चलते फिरते ही किसी को तकलीफ़ दिए बिना अचानक एक दिन मर जाना चाहिए, गोमतियम्माल"।

"हां, ऐसे मरनेवाले तो पुण्यात्माएं हैं..."

इस तरह मन में कडवाहट के साथ बोलने पर भी कोई तीज-त्योहार के अवसरों में विश्राम घर के भोजन में 'मोरकुळम्बु' दिए जाने पर गोमतियम्माल फिर से उन यादों में आंखों को फैलाती हुई डूब जाती थी कि, "मेरे शेखर को यह मोरकुळम्बु बहुत पसंद है। उसमें भी बिना तीखेपन के कद्दू और कैथनीम के पत्ते लगाकर यदि मैं बनाऊं तो चार बार उसका स्वाद लेता था। उसे रसम भात या और कुछ भी नहीं चाहिए।"

अब यह स्पष्ट हो गया है कि उसकी कड़वाहट, विरक्ति, परोपकारी सेवाएं आदि मन की असह्य वेदना को ओढ़नेवाली चादर ही हैं। अब उन चादरों की ज़रूरत नहीं है। अपनी ममता के लिए हरा

झंडा मिल गया है। बेटे के मोरकुळम्बु में डूबनेवाला अपना मन खूब व्यक्त हो सकता है। तन और मन थकावट को भूलते हुए उत्साह से भर गया था।

"मैं अपने घर जाने वाली हूं। मैं अपने परिवार के साथ फिर से मिलकर रहने वाली हूं न। बेटा मुझे लेने के लिए आ रहा है, मेरा शेखर मुझे अपने घर ले जानेवाला है।..."

विश्राम घर में जितनी भी बुनियादी आवश्यकताओं की तथा आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति होने पर भी अपना घर, अपना परिवार, अपने बच्चे, अपने पोते-पोतियों आदि के प्रति चाहत उधर अधिकांश बुजुर्गों के मन को बुढ़ापे में भी सताए बिना नहीं छोड़ती। पेट भरने पर भी एक आत्मीयता से युक्त स्पर्श की ज़रूरत थी। अपनी चीज़ के प्रति मन में होनेवाली एक गर्मी इनके एवज में और कुछ नहीं है।

अब गोमतियम्माल को उस आवश्यकता की पूर्ति होने वाली है। पिछले हफ़्ते में एक दिन बेटे के आने के बाद से लेकर वह यही खबर फ़ैला रही थी।

"अपने घर जाने वाली हूं। बेटा आकर ले जानेवाला है।"

दूसरों को आश्चर्य होने लगा, क्या यह वही बेटा है जिसने अपनी मां को कूड़ेदान में फटे कपड़े की तरह फेंक दिया था? उसका मन कैसे बदल गया?

गोमतियम्माल ने स्पष्ट किया।

'आजकल बहू नौकरी पर जा रही है। बड़े बच्चे की उम्र पांच साल हो गई है। स्कूल जा रहा है। कोई समस्या नहीं है। अब तो दूसरा बच्चा हो गया है न? बहू ने जितनी हो सके उतनी छुट्टी ले ली हैं। उसके बाद भी बच्चे के लिए आया, शिशुसदन भी संतोषजनक नहीं रहा है। बहू ने बच्चे की देखभाल के लिए अपनी मां को लाकर रखने की कोशिश की थी। लेकिन उसकी मां को हृदय रोग हो जाने के कारण दूसरे की सहायता की ज़रूरत पड़ती है। अब उनकी स्थिति ऐसी है। इसलिए मुझे ही ले जाकर बच्चों की देखभाल करने के निर्णय पर पति और पत्नी अब पहुंच गए हैं। अपनी सगी दादी की तरह कोई आया, पड़ोसी या क्रेशवाले बच्चे की प्यार के साथ देखभाल करेंगे क्या? यही कारण हैं।"

भूपति उसे खामोश होकर देखते रहे तो, गोमतियम्माल की घनिष्ट सहेलियों ने यह दुख प्रकट किया, "अंत में अपनी सुविधा के लिए ही..." "बिना वेतन की नौकरी की तरह ही...।" लेकिन गोमतियम्माल की खिली आंखें, उछलते पैर आदि इन बातों से प्रभावित नहीं हुए। वह अपने घर जा रही है। अपने बेटे के पास जा रही है। अपने पोतों के साथ रहने वाली है।

अगले हफ़्ते के दोपहर को उसका बेटा शेखर ऑटो से आकर उतरा। विश्राम घर चलाने वाले मध्य आयु के दंपत्ति के साथ बातें करते हुए औपचारिकताओं की उसने पूर्ति की। गोमतियम्माल अध्यक्ष दंपत्ति सहित सबसे खुशी के साथ विदा लेने लगी।

"मैं हो आती हूं सुलोचना जी? हो आऊं क्या बालामणी जी? हो आऊं क्या भूपति जी?"

शेखर काले ट्रंक, पेटी तथा मां को ऑटो में ले जाने लगा। शेखर के भी चढ़ने के बाद ऑटो धूल उड़ाते हुए दौड़कर गायब हो गया।

(शेष पृष्ठ 29 पर)

कौन है वह

कमलादेवी शुक्ल

ओफ! कैसा सुंदर! उस लाल, सुनहरी झालरों के पीछे कौन झांक रहा है? अरे, यह झालरें तो हटने लगी हैं। नहीं, झालरें नहीं हटीं, यह तो उसके सामने आ जाने से, झालरों की शोभा फीकी पड़ गई है। कितना प्यारा मुखड़ा है। लगता है जैसे झील में अभी-अभी खिला कमल हो। कैसी आभा फूट पड़ी है, मानो उसी का तेज फैल रहा है सब ओर। ओह! कितना उज्ज्वल, कैसा तेजस्वी चेहरा है उसका। जिसको देखकर जड़ पदार्थों में चेतनता की लहर दौड़ जाए और चेतन? आश्चर्य से जड़ हो जाए।

कौन है वह? अरे, वह तो मेरी ओर ही देख रहा है। लगता है जैसे वह मुस्कुरा रहा है। बाप रे! वह तो सचमुच मेरी ओर देखकर हंस रहा है। तो क्या मुझे उसकी ओर नहीं देखना चाहिए था? क्या सोचता होगा मन में? उसकी ओर देखकर मैंने क्या बुरा किया? सुंदर वस्तु की ओर तो हर कोई देखेगा। वह सुंदर है, हर कोई उसकी ओर देखता होगा, देखकर आश्चर्य से स्तब्ध रह जाता होगा। ओह! भूल गई कि मैं स्त्री हूं। पर पुरुष की ओर देखना, उसकी प्रशंसा करना, स्त्री के लिए घोर पाप है? परंतु यह कैसा पाप? कैसा बंधन। निःस्वार्थ भाव से किसी की सौंदर्य की प्रशंसा करना पाप है? यदि पाप है तो यह भाव मन में क्यों उभर आया? मन की बात ओठों पर लाना पाप है। सुंदर को सुंदर कहना पाप है? मां अपने सुंदर बालक को देखकर लट्टू हो जाती है। बीरन भैया के बांकेपन पर किस बहन को गर्व नहीं होता? इसी भाव से एक स्त्री किसी और की ओर नहीं देख सकती?

ओह! मैं भी कैसी भीरू हूं। किसने कहा कि तुम मत देखो? देखना पाप है! किसी ने कुछ नहीं कहा, बस मैं ही मन में विवेचन करने लग गई हूं। अरे, वह तो इधर ही आ रहा है। लो, वह झरोखे के पास भी आ गया है।

"कौन हो तुम?"

"..............."

"क्या नाम है तुम्हारा?"

"........................."

"क्या तुम उस अटारी में रहते हो?"

"......................................"

हँ, वह तो चला गया। कैसा आदमी है, जैसे मुंह में जबान ही नहीं है। बोलना ही नहीं था तो मेरे झरोखे से क्यों झांका? एक प्रश्न का उत्तर तो देता। मेरे प्रत्येक प्रश्न पर केवल मुस्कुरा देता था। कैसी मीठी मुस्कुराहट थी उसकी। इतनी शीघ्रता से कहां चला गया? कब तक लौटेगा? मैं उसको अंदर आने के लिए भी नहीं कह सकी। संभवतः इसी कारण वह मुझसे नहीं बोला। बंद कर दूं झरोखा! अब उस सूनी अटारी की ओर नहीं देखा जाता। हूं, चला जाए....घमंडी....अपनी सुंदरता पर उसको इतना अभिमान है, तो रहा कर। मैं भी उपेक्षा कर सकती हूं...ओह। कैसी प्यारी मुस्कुराहट थी उसकी।

कौन है वह?

नहीं, झरोखा नहीं खोलूंगी। वह समझेगा, मैं उसकी बाट जोह रही हूं। क्यों नहीं समझेगा? वह सुंदर जो है। ऊँह, उसके समझने ना समझने से मुझे क्या? इस भय से मैं अपना झरोखा क्यों बंद रखूं? यह कैसी पीड़ा? उसकी एक झलक, एक मुस्कुराहट ने मुझे पागल बना दिया है। नहीं, उसको देखे बिना मैं नहीं रह सकती। झरोखा क्यों बंद रखूं? यह कैसी पीड़ा? झरोखा खोलना ही पड़ेगा...अरे, वहां तो कोई नहीं है। अटारी कैसी उदास लगती है। कल वह इसी समय तो वहां खड़ा था। कहां चला गया वह? क्या वह फिर से नहीं दिखाई देगा? उस अटारी की उदासी, मुझे खाए जा रही है। बंद कर दूंगी झरोखा, नहीं देखूंगी उधर। नहीं, ...कुछ और प्रतीक्षा करूंगी।

आहा। आ गया वह। उसको देखकर मैं क्यों इतनी प्रसन्न हो रही हूं। ऐसा लगता है जैसे उसका मेरा जन्म-जन्मांतर का नाता है। उसको देखकर मैं अपनी सारी व्यथा भूल गई हूं। जी चाहता है बस, उसे देखती रहूं, देखती रहूं, देखती रहूं। युग-युग तक न वह अटारी से हिले, ना मैं झरोखे से। चाहे हवा का बहना थम जाए, पत्तों का हिलना रुक जाए, पर वह, उसकी अटारी, मैं, मेरा झरोखा स्थिर रह जाए। यह कैसा अस्थिर मन है। पल में कहां से कहां चला गया। पल में ही अनजाने से अटूट नाता जोड़ बैठा। वास्तविक जगत से दूर, काल्पनिक जगत में बहक रहा है।

अरे, वह तो इधर ही आने लगा है। आने दो, उससे पूछूंगी कि आज तुमने क्यों प्रतीक्षा करवाई? उस सूनी अटारी को देखकर कितनी उदास हो रही थी मैं।

नहीं, मैं क्यों उदास होने लगी? वह आए न आए, मुझे क्या? मैं उससे कुछ नहीं बोलूंगी। यदि वह पास भी आए तो मैं मुंह फेर लूंगी। जाए मेरी बला से, मुझे क्या उससे। अरे, वह तो सचमुच चला गया। कैसा निष्ठुर है, पत्थर हृदय। कितना भोला दिखाई देता है, कैसी मीठी हंसी हंसता था...घमंडी...रुक जाता तनिक। ऐसे भागता है जैसे वही एक कार्य में व्यस्त है। ठीक है, मैं भी दिखा दूंगी कि मुझे भी उसकी कोई परवाह नहीं है। बंद रखूंगी झरोखा। इतनी प्रतीक्षा करवाऊंगी कि व्याकुल होकर वह स्वयं मेरा झरोखा खटखटाए। काश! मैं ऐसा कर पाती। क्यों इतनी व्याकुल हूं उसके लिए? कौन है वह?

यह कैसी व्याकुलता। लगता है मेरा रोम-रोम दुःख से कराह उठा है। यह कैसा अवसाद भर गया है मेरे जीवन में। इस अवसाद के बोझ को वहन किए, मैं कैसे कार्य कर सकूंगी? नहीं...मुझे धैर्य रखना होगा। मन को स्थिर किए इस जीवन-चक्र को चलाना होगा। अन्य को सुरक्षित रखने के लिए, मुझे चक्र की तरह घूमना है। स्वयं को चक्र बनना है, लट्टू की तरह घूमना है। यदि थककर, स्थिर हो जाऊंगी तो गिर जाऊंगी लट्टू की तरह। लट्टू का जीवन भी कितना सार्थक है। वह डोरी का बल पाकर घूमता है। जितना डोरी का बल अधिक होता है, उतना ही वह तेजी से घूमता है। जब थक कर गिर जाता है तो डोरी का सहारा पाकर पुनः घूमने लगता है। परंतु मैं? किसका सहारा है मुझे? अब तक अविरल गति से इस जीवन-चक्र में पिसती चली आई हूं। ऐसा लगता है, इस असीम आकाश में, इस भयंकर शून्य में मैं अकेली हूं, नितांत अकेली हूं। मेरा अपना कोई नहीं है। सब दूर ही से निहारते हैं। किसी ने मेरी व्यथा नहीं पूछी। किसी के मन में मेरे प्रति अनुराग नहीं है। किसी से मुझे ममता का सहारा नहीं मिला। कब तक अकेली भटकती रहूंगी? अब यह एकाकी जीवन असह्य है। क्या करूं? चलती रहूं अकेली, जब तक चल सकूं। जब थक जाऊंगी, छिन्न-विच्छिन्न होकर शून्यमय अंधकार में, अनंतकाल तक भटकती रहूंगी। ओह...अंधकार...भय...अकेली...ओ मेरे अंधकार मय जीवन के प्रकाशमय प्रभाकर,

क्यों त्याग दिया है तुमने मुझे? क्या अपराध था मेरा? क्यों मुझको दूर किया है तुमने?

यह कैसी चंचलता आ गई है मेरे मन में। अब तक कितने धैर्य से इस जीवन को संभाला था मैंने। किसी प्रकार के अभाव का एहसास नहीं था। अपने इस एकाकी जीवन पर कितना अभिमान था मुझे। मेरा मार्ग निश्चित था, मैं चल रही थी अपने मार्ग पर। किसने रोका है मेरे मार्ग को? कौन है वह?

यह झरोखा? बंद है कई दिनों से। क्यों याद आती है उसकी? कितना प्यारा, कैसी भोली सूरत।

मेरा उससे क्या नाता? क्यों इतनी व्याकुल हूं उसके लिए? अब नहीं सहा जाता, खोल दूं झरोखा? उससे अभिमान करके, मैं शांति से नहीं रह सकूंगी।

रात का तीसरा पहर उलट गया है पर अभी तक वह नहीं आया। कहां चला गया होगा? क्या वह मुझसे रूठा होगा? कहां खोजूं उसे। अरे, यह कैसी बूंदें गिर रही हैं? कौन है ऊपर? तुम? तुम रो रहे हो? कितने दुबले हो गए हो, चेहरा कितना मलिन हो गया है, निस्तेज हो गए हो। क्या हो गया था तुम्हें? बीमार हो क्या? कौन हो तुम? बोलते क्यों नहीं? अपना परिचय क्यों नहीं देते?

''मैं तेरा जीवन साथी हूं वसुंधरा।''

''कौन? जीवन-साथी। तू मेरा जीवन-साथी?''

''हां वसु, मैं सोमू, तेरा जीवन-साथी हूं। तुझे नहीं मालूम, जब से, तेरे प्रभामय जीवन से बिछड़कर, अंधकारपूर्ण जीवन को अपनाया है, तभी से मैं तेरे साथ हूं, मैं तो तेरा ही अंश हूं। तू इतनी स्वाभिमानी है कि तूने अपने प्रभाकर को त्यागकर, किसी और प्रभा को नहीं चाहा। तू अपनी ही धुन में मगन रही, अपनी ही धुरी में इठलाती रही। जब से मैंने तुझे देखा, तूने मुझे आकर्षित किया और मैं तेरे गिर्द चक्कर लगा रहा हूं। पर तू है कि कभी मुड़कर भी नहीं देखती।''

''सोमू! मेरे प्यार को ठोकर लगी है। मेरी आत्मा चीत्कार कर उठी है फिर भी मैंने अपने को संभाला था। मैं विवश हो गई थी एकाकी जीवन जीने के लिए। परंतु अब नहीं रहा जाता। तूने फिर से मेरे हृदय में प्रीत के अंकुर को बोया है। इस अंकुर को जलाना मत। इस स्नेह से मुझे वंचित नहीं करना। यह मेरे पवित्र प्यार का आह्वान है, स्वीकार करना। क्या हम दोनों साथ नहीं रह सकते?''

''नहीं वसु, हम दोनों साथ नहीं रह सकते। बस सीमित अंतर तक ही हम पास आ सकते हैं। इस ब्रह्मांड के अभिशाप को तू नहीं जानती। पास आने पर हम दोनों ही नष्ट हो जाएंगे। जब भी मैंने पास आने का प्रयास किया, मेरी सारी शक्ति नष्ट होती रही। मैं निस्तेज हाकर, निराशा से लौट जाता। दूर से ही तेरे साथ चल रहा हूं।''

''नहीं सोमू, अब इस अवसाद को सहने की शक्ति मुझमें नहीं रही। अब एकाकी जीवन को नहीं सह सकती। अब तक मुझे ऐसा लगता था कि सब अकेले हैं। उसी प्रकार मैं भी अकेली हूं। परंतु अब इस एकाकी जीवन से मन घबरा उठा है चाहे जो हो, हम साथ रहेंगे। यदि शापवश हम नष्ट हो जाएं तो बहुत ही अच्छा होगा। इस एकाकी शुष्क जीवन से छुटकारा पा जाऊंगी और इस अनंत शून्य में विलीन हो जाऊंगी, जहां न कोई अकेला है, न साथी है। सब एकरूप। जहां न कोई भाव है, न अभाव है। उस विराट सत्ता में लय हो जाऊंगी। पानी का बुदबुदा फूटकर, पानी में लय हो जाता है। समुद्र से लहरें उठकर, उसी में विलीन हो जाती हैं। मैं भी उस विराट सत्ता की एक लहर हूं, एक बुदबुदा हूं। मुझे भी नष्ट होना होगा। इस अशांत जीवन को वहीं शांति मिलेगी। इस अविराम जीवन का विराम,

विश्राम यही है।''

''हां, वसु, इतने लंबे समय के बाद भी तू जीवन को नहीं समझ सकी तो यह ज्ञान की बातें व्यर्थ हैं। जीवन की सार्थकता स्वयं के लिए नष्ट होने में नहीं है। यह जीवन, औरों के लिए है वसु। स्वयं के लिए जिए, वह जीवन कैसा? वसु! तेरे जीवन का कितना महत्व है, तू नहीं जानती। कष्ट सहन करते हुए, जीवित रहकर, हम किसी एक का भी जीवन बना सके तो धन्य है। यहां पर कितनों को तेरा ही आधार है। तुम अपने से घबराकर, इनको निराधार छोड़ दोगी? तुम अपने साथ इनको भी नष्ट करोगी? मुझे ही देख, मेरा जीवन, मेरा तेज तेरे ही कारण है। मैं चुंबक की तरह तेरे गिर्द घूमता हूं। जिस दिन तुम मुझसे मुंह फेर लेती हो, मेरे सारे तेज पर एक कालिमा की चादर-सी ढंक जाती है। मैं भी एक अंधकार बनकर रह जाता हूं। तेरा तेज पाकर ही मैं औरों के मन को सुख पहुंचा सकता हूं। अपनी शक्ति अनुसार, दूसरों को सुख पहुंचाने में कितना सुख है, क्या तूने इसका अनुभव नहीं किया? वसु, जीवन को समझने का प्रयत्न कर। अवसाद को त्याग, विराग को धारण करले, तुझे शांति मिलेगी। यह सुख-दुःख केवल मन का भ्रम है। भावनाओं को नष्ट कर दे, मन स्थिर होगा। तुझे विराट सत्ता में विलीन होना है ना? तो मन को स्थिर कर ले। मन का स्थिर होना ही विराट सत्ता में लय हो जाना है। मन की स्थिर अवस्था ही विराट स्वरूप है।''

''ओह! कैसा भ्रम1 कैसा सम्मोहन छा गया था मुझ पर। किसी को अपना बनाने की इच्छा, किसी का आधार पाने की इच्छा ही जीवन को अस्थिर कर देती है। स्वयं किसी के होकर, किसी का आधार बनकर, कार्यरत होने में ही जीवन की सार्थकता है, यही जीवन है। निष्काम कर्म ही जीवन का यथार्थ मार्ग है, धर्म हे, जीवन का गूढ़ मर्म है। प्रिय सोमू, मैंने प्रभाकर से बिछड़कर, अंधकारमय जीवन को अपनाया था। अब तुम्हारे सौम्य प्रकाश में, तुम्हारे त्यागमय जीवन का ज्ञान पाकर, मैं धन्य हुई।''

(पृष्ठ 25 का शेष)

भूपति द्वार पर ही खड़े होकर देख रहे थे। विदाई देने के लिए आने वाले सब लोग लौट गए तो भूपति उधर ही खड़े होते हुए उसी दिशा की तरफ़ देख रहे थे जिस दिशा में गोमतियमाल गई थी।

''क्यों भूपति जी, अंदर क्यों नहीं आते? क्या तबीयत ठीक नहीं है?''

''बेचारे, वे दोनों अच्छे दोस्त थे, विदाई करने में तकलीफ़ ही होगी।''

उन्हें यह पता नहीं था कि किसने ऐसे कहा। उन्होंने सिर मोड़कर नहीं देखा। पता नहीं कि खुद अपने आपको बोल रहे थे या सबसे दबे स्वर में यही आग्रह कर रहे थे, लेकिन वे बार-बार इन्हीं शब्दों को दोहरा रहे थे।

''मुझे भी छोटे बच्चों को संभालना मालूम है। इस तरह सोचना गलत है कि बच्चों को स्त्रियां ही पाल सकती हैं...मैंने ही अपने बेटे को पाला है न...मैं भी पोते-पोतियों को संभाल सकता हूं...''

(तमिल से अनुवाद : डॉ. वे. पद्मावती)

हाइकु

चंद्रेश सिंगल

यह सफर
अनजान डगर
चलो मगर।

आम्रवन में
छिपी पिक का स्वर
नभ में गूंजे।

मेरे द्वार से
आते जाते रहते
खुशी औ' गम।

चिंता का छोटा
वात्यचक्र ले गया
उड़ा शकुन।

मन में गांठ
मैं मुस्लिम तू हिंदू
भेद को छांट।

हाइकु

श्याम 'अंकुर'

मौन रहना
सागर का जीवन
मोती छिपे हैं।

कहां हैं कांटे
जानता बेहतर
मन से पूछा।

देश जलता
द्रोही मसीहा बने
बड़ी त्रासदी।

लोग डरते
सच न उगलते
क्या मौत नहीं?

बस्ती में आग
लाल धरती हुई
सियासत है।

कमाऊ पत्नी

चोङ्थाम यामिनी देवी

इतनी देर से क्यों लौटी हो? देबेन ने पूछा।

मां की तबीयत ठीक नहीं है, पता चला तो ऑफिस से लौटते हुए मां के पास चली गई थी- बिनो ने उत्तर दिया।

कभी ये, तो कभी वो बहानेबाज़ी। बहुत मनमानी करने लगी हो,

झूठ नहीं कह रही हूं। मां को रिक्शे से टक्कर लगी है। उनके पांव अब भी सूजे हुए हैं।

चलो आज ठीक है, कल क्यों देर से आई थीं?

एसेंबली में हमारे डिपार्टमेंट के बारे में प्रश्न पूछे जाएंगे, उसी की तैयारी में प्रमो, इबेयाइमा, हम सबको रुकना पड़ा था। देर होने पर उनके पति आए उन्हें लेने के लिए। मुझे लेने के लिए तुम क्यों नहीं आ गए?

देबेन बेरोज़गार है, कुछ कमाता नहीं। कमाऊ लड़की से शादी की है, बहुत चालाक है। बिना कुछ किए पत्नी ही घर चला रही है। लोगों के ताने देबेन को छलनी करते रहे हैं, इसलिए अपनी पत्नी को छोड़ने और लेने जाना उसे कतई पसंद नहीं, सो वह करता भी नहीं। कभी पत्नी जल्दी चली जाती या थोड़ी देर से लौटती तो पुलिस की तरह पूछताछ करता बिनो से। बिनो की बात सुनते ही तुनककर उत्तर दिया

मैं क्या तुम्हारा नौकर हूं, जो छोड़ने और लेने जाने की बात कर रही हो?

इसमें नौकर होने की क्या बात हो गई? मैं तो पैसे के लिए ऑफिस भी जाती हूं और घर का सारा काम खाना बनाना, बर्तन धोना, पोंछा लगाना, कपड़े धोना सब करती हूं। ये सब क्या मैं नौकर होने की वजह से करती हूं। देर हो जाने पर लेने नहीं आ सकते तो घर के कामों में तो थोड़ा हाथ बंटा सकते हो।

घर का काम करना, खाना बनाना, ये सब औरतों का काम है। ऑफिस जाती हो, कमाती हो तो क्या मैं घर के कामों में जुट जाऊं?

कुछ भी बोलो, तुम सुनते ही नहीं हो। कुछ कहो तो मुसीबत, न कहो तो मुसीबत। दुविधा में फंसी बिनो धीरे-धीरे बोली, तुम तो कुछ कमाते नहीं। नहीं तो मैं ही घर और बच्चा संभालती।

जले पर नमक छिड़क दिया हो जैसे, देबेन का पारा एकदम से चढ़ गया।

ठीक है कमाऊ औरत, आज से तुम्हारा दिया कुछ भी नहीं खाऊंगा; कहकर बिस्तर में घुसा और सो गया।

मुंह अंधेरे उठकर घर का सारा काम निबटाकर हड़बड़ाहट में ही ऑफिस गई थी। अब फिर अनमनी-सी रसोई में घुसी और खाना बनाने लगी। खाना खाने के लिए देबेन को उठाया। जो सोया न हो, सिर्फ ढोंग कर रहा हो, उसे कैसे जगाया जाए। बार-बार जगाने का कोई फायदा न हुआ। कोई चारा न देख बच्चा लेकर वह भी सो गई। तरह-तरह के विचार उसके मन में आते रहे। नींद भी नहीं

आ रही थी। उसे याद आया- शादी से पहले उसके सबसे छोटे चाचा चाओबा ने एक दिन कहा था-

बिनो, जवानी के प्यार से पेट नहीं भरता। लड़का कुछ भी नहीं करता, कुछ कमाता नहीं। तुम कमाती हो इसलिए सब ठीक हो जाएगा, ऐसा मत सोचो। पुरुष का अपना अहं, अपना मान होता है। तुम्हारी नौकरी ही घर टूटने का कारण भी बन सकती है। जब प्रेम का ज्वार उतरेगा तब अपनी, घर की, समाज की वास्तविक स्थिति से सामना होगा, ध्यान देना इस बात पर।

'ठीक यही हुआ', बिनो यह समझने लगी थी। बिनो कमाती है, घर की छोटी-छोटी जरूरतों को पूरा करने की कोशिश करती है, परंतु देबेन का अहं, घमंड, अधिकार जताने की प्रवृत्ति, स्वामी होने का भाव- इन सबके कारण घर की शांति जाती रही। कितने ही दिन वह भूखी रही है। कई बार मार भी खा चुकी है।

अगले दिन भी बिनो को दफ्तर में रुकना पड़ा। घर की स्थिति याद कर वह घबराने लगी थी। अपनी सहकर्मी प्रमो से बोली-

प्रमो, मुझे थोड़ा जल्दी जाना है। तुम संभाल लेना सब।

रुको! क्या कह रही हो? तुम अकेली नहीं हो, जो जल्दी जाना चाहती हो। मैं भी अपने छोटे से बच्चे को मायके में छोड़कर आई हूं। जो मीटिंग चल रही है, उसके पूरी होने से पहले किसी को घर जाने की इजाज़त नहीं है, सर कह गए हैं।

बिनो क्या कर सकती थी? वह सरकारी काम कर तनख्वाह पाती है। स्त्री-पुरुष दोनों एक-सा काम करते हैं और तनख्वाह भी समान होने की मांग करते आए हैं। एक-सा काम करने वाले सभी स्त्री-पुरुष मीटिंग पूरी होने तक रुके हुए थे। बिनो को भी रुकना पड़ा।

बिनो लूना को काफी तेज़ चलाती हुई लौटी। गांधी हॉल के सामने पहुंची तो रात के आठ का घंटा बज उठा। घड़ी का घंटा कानों में नहीं, दिल में हथोड़े के समान बजने लगा। घर पहुंची तो बच्चे के रोने की आवाज़ आई। दरवाज़ा खटखटाया, पर देबेन ने दरवाज़ा नहीं खोला। बार-बार खटखटाने पर देबेन निकला -

''जा जा, चली जा यहां से, बदचलन औरत'' कहते हुए उसे धक्का मारा।

क्या कर रहे हो। मैं अकेली नहीं, और भी तो थीं। ऑफिस में काम था; इसलिए रुकना पड़ा, थोड़ी देर हो गई।

ऑफिस! ऑफिस! हमेशा। तनख्वाह पाती हो तो सब मर्यादाएं भी तोड़ दोगी तुम?

तुम तो पढ़े-लिखे हो। ऑफिस में काम करने वालियों की परेशानी क्यों नहीं समझ रहे हो?

आगे कुछ न बोलकर देबेन ने दरवाज़ा धड़ाम से बंद कर लिया।

बिनो को मायके में रहते काफी दिन गुज़र गए। लोगों की बातें तो वह सह लेती, परन्तु अपने बच्चों की जुदाई सहना मुश्किल था। उसे दुःखी देखकर उसकी सहेली इबेयाइमा ने उससे कहा -

बिनो इस तरह मर-मरकर क्यों जी रही हो। औरत के अधिकार की ताकत का फायदा उठाओ। छोटे बच्चे को अपने पास रखना तुम्हारा हक बनता है। कोर्ट का दरवाज़ा खटखटाओ।

काउन्सलर ने देबेन का बयान लिया -

मेरी पत्नी मेरा लिहाज़ नहीं करती। मैं अब उसके साथ नहीं रहना चाहता।

तुम दोनों यदि अलग हो गए तो बच्चे का क्या होगा?

बच्चा मेरा है, अपने पिता के साथ रहेगा।

बिनो ने बयान दिया -

मेरे काम पर ये कभी विश्वास नहीं करते। मुझ पर तरह-तरह के लांछन लगाकर मारते-पीटते हैं। हमेशा मुझे परेशान करते हैं, इसलिए मैं अलग रहना चाहती हूं। बच्चा अभी छोटा है, उसे मेरे पास रहने दीजिए।

काउन्सलर ने दोनों को समझाया -

शादी ब्याह खेल नहीं है। प्यार हो गया तो शादी कर ली और झगड़ा हो गया या एक-दूसरे से असंतुष्ट हो गए तो अलग हो गए, ऐसा नहीं होता। तुम दोनों का बच्चा भी है। अलग हो गए तो बच्चे का क्या होगा? बच्चे को माता-पिता दोनों के प्यार और देखभाल की ज़रूरत है। इसलिए तुम दोनों ही अपनी-अपनी पसंद और नापसंद को भूल जाओ। दोनों ही बच्चे के लिए एक साथ रहो।

दोनों ही चुप रहे। एक शब्द नहीं कहा किसी ने। काउन्सलर ने बार-बार पूछा- 'हां' या 'न' में मुझे जवाब दो। थोड़ी देर बाद देबेन बोला- ये काम छोड़कर घर संभालने को राज़ी हो जाए तो मैं तैयार हूं।

फिर तुम कैसे अपने बच्चे और पत्नी का भरण-पोषण करोगे?

मेरे नाते-रिश्तेदार हैं अभी। कुछ भी करके पाल लूंगा।

शाबाश! मर्द हो, मर्दानगी दिखाओ। काउन्सलर ने अपना मत व्यक्त किया।

तनख्वाह पाकर आर्थिक दृष्टि से आत्म-निर्भर होकर जीना है या काम छोड़कर बच्चे को, गृहस्थी को संभालना है?... बिनो के जवाब का बेसब्री से इंतजार हो रहा है........।

(मणिपुरी से अनुवाद : एलाङ्बम विजयलक्ष्मी)

समीक्षा

घर तो घर है बाजार नहीं

डॉ. हरिसुमन बिष्ट

कवि लालित्य ललित मेरे अनन्य मित्रों में हैं और यदि अपने प्रिय कवियों का नाम गिनाना पड़े, तो उनमें से एक हैं। ललित की कविताएं मुझे पसंद हैं इसलिए नहीं कि वह मित्र हैं बल्कि उनकी कविताओं में जीवन का भोगा हुआ यथार्थ है, अनुभव है, उनकी कविता क्लिष्ट नहीं है, सरल-सहज और सुबोध है। उससे बड़ी बात यह कि ललित अति संवेदनशील कवि लगते हैं, इससे यह स्पष्ट होता है कि वह स्वभाव से कवि हैं।

ललित निरंतर लिख रहे हैं। इसके बावजूद जिस सेवा विभाग से जुड़े है उसके कार्य से वह लंबी-लंबी यात्राओं के आवागमन में व्यस्त रहते हैं। उनकी कविताओं का अनुवाद अंग्रेजी, गुजराती, पंजाबी आदि भाषाओं में हो चुका है। कविताओं का स्वागत भी हुआ है।

मेरी हार्दिक इच्छा थी कि लालित्य ललित की कविताओं पर लिखूं- यह समझते हुए भी कि मैं कविता का आदमी नहीं हूं, गद्य लिखता हूं, वह भी हिंदी जगत की तिकड़मों से दूर। मुझे लालित्य ललित भी इसी स्वभाव के लगते हैं और उनके कविता संग्रह 'इंतजार करता घर' की ही शायद मुझे प्रतीक्षा रही होगी।

संभवतः यह लालित्य का पांचवां कविता संग्रह है जबकि संपादित कविताओं की रचनाओं का संग्रह इसमें शामिल नहीं है- वे अलग हैं, इसमें अब तक प्रकाशित कविता संग्रहों में ललित की कविताओं का क्रमवार विकास मिलता है, वह बड़ी शालीनता से अपनी बात कहते आए हैं जिसमें किसी तरह का बड़बोलापन, सतहीपन या आधी-अधूरी जैसी कोई बात नहीं होती बल्कि वह कुछ भी ऐसा नहीं छोड़ना चाहते जो पाठक को भ्रम की स्थिति में डाल दे। जिस तेजी से समय बदला है, कविता का मुहावरा बदला हैं और विषयों में बदलाव आया है। इसका संकेत इन कविताओं में स्पष्ट दीखता है। सच सुनना कठिन है और झूठ सुनना आसान है। और मुझे सच पसंद है। बिल्कुल तुम्हारी तरह' स्पष्टवादिता इतनी कि कहीं भी कहने पर नहीं चूकते- सदियों से सदियों तक/ मौसम चाहे कोई भी हो/सबने मेरा शोषण किया है। कभी-कभी अपनों ने। तो कभी पड़ौसी ने - वही पड़ौस जिसे कभी जन्म-मरण सुख-दुख का साथी माना जाता था। उस आम जिंदगी, खुरदरी जिंदगी के अनुभव को अपने ठेठ सीधी-सादी भाषा में कह देते हैं। यहां पर संदेह होता है कि यह कविता भी है या नहीं। कविता करना एक कला है- वह कला जबकि ललित में मौजूद है परंतु यह बात ललित के संदर्भ में फिट नहीं बैठती- उनकी कविताओं की विशेषता नहीं बल्कि इसे उनकी पहचान कहना उचित प्रतीत होता है कि सीधे-सीधे अपनी बात कहना ही उनकी रचनाधर्मिता की विशेषता है, यह एक अनूठा तरीका भी है। जीवन में जो कुछ जैसा भी घटता है वह सब कविता है और कविता के विषय हैं, क्योंकि जिंदगी से अलग कोई जिंदगी और न उससे कटकर कोई जिंदगी होती है। इस जिंदगी को हंसते-खिलखिलाते रोते- बिलखते या ऊंची-ऊंची पहाड़ियों के क्षितिज के उस पार जीवन या फिर समुद्र के तट पर खड़े जीवन और मृत्यु के विषय के केंद्र में समेट लेना यह सब कविता के विषय नहीं हैं तो और फिर क्या हो सकते हैं- शायद कविता ही यहां एक आकार

लेती है और उसका निर्माण करना पूरा होने तक समय बहुत निकल चुका होता है। जिंदगी को समझना/ आसान नहीं/ औरत को समझना आसान नहीं/ तो फिर आसान क्या है/ कुछ भी नहीं।

क्या सरल क्या कठिन दोनों ही स्तर को कवि अच्छी तरह समझता है, बहुत कुछ कहता है और सुनता है, इसी प्रक्रिया से वह यहां तक की यात्रा कर पाया, आज किसी बात, घटना को सतही नहीं लेता। उसमें अन्वेषण क्षमता बढ़ी है और कहीं-कहीं उपदेशात्मक भी हो जाता है- यह दो प्रकार से होने की संभावनाएं बनती है: एक कवि ने इतना अनुभव प्राप्त कर लिया या फिर दूसरा व्यक्ति रूप में उम्र की उस सीढ़ी पर पहुंच चुका है जब कर्मेंद्रियां शिथिल पड़ जाती हैं तब। ललित के संदर्भ में पहली स्थिति ही करीब प्रतीत होती है। जो उनके न सकारात्मक सोच का प्रकटीकरण है और न नकारात्मक सोच का लेकिन यहां यथास्थिति कविता की धार को भी कमजोर बना देता है- बहरहाल।

सचमुच कवि पर सांसारिकता का भी प्रभाव है। बाजार की चकाचौंध से बिदका है उसमें कोई कुंठा भी नहीं है, उसे बाजार विज्ञापन से अटा पड़ा दिखता है। जिसमें दिखावा झूठ, फरेब सभी चढ़कर बोलते हैं, उनके केंद्र में उसे स्त्री दीखती है, जिसका बाजारीकरण हो चुका है- स्त्री देह बाजार की वस्तु बन चुकी है, इससे कवि का मन अवश्य विचलित है- जिसके लिए वह भीतर से चिंतित दिखाई पड़ता है 'मुखौटे के साथ' कविता बाजार को समझने का अच्छा उदाहरण है।

प्रस्तुत कविता संग्रह में 83 कविताएं हैं, अधिकतर कविताओं के केंद्र में स्त्री है, कविताएं सहज और स्वाभाविक हैं, शायद ही कोई विषय अछूता हो आज लिखने के लिए, अपनी पहचान बनाने के लिए कविता में यह जरूरी भी है, क्योंकि जिंदगी में यह विषय जरूरी है जिनसे कटकर जिंदगी नहीं चल सकती, इसे संग्रह की सफलता ही मानी जाएगी ऐसा मेरा विश्वास है।

इंतजार करता घर (कविता संग्रह) लालित्य ललित / नमन प्रकाशन, नई दिल्ली-110002 / रु. 150/- /2010

निबिड़ तम में आशा के जुगनू बिखराती कविताएं

डॉ. अनुपम माथुर

आतंक की ज्वाला में बरसों झुलसने के साथ कश्मीर वासियों ने अपने ही देश में विस्थापन की विवशता और वेदना को अपने तन और मन पर झेला है। अपनी जड़ों से टूटने, अपने घर से बेघर होने की असह्य, दृश्य-विदारक, जीवन को छिन्न-भिन्न कर देने वाली पीड़ा को अनेक भुक्त भोगी रचनाकारों ने विभिन्न विधाओं में शब्दांकित किया है। ऐसे ही रचनाकारों में अग्रगण्य, बहुमुखी व्यक्तित्व संपन्न रचनाकार महाराज कृष्ण 'भरत' अपने बहुविधा संपन्न रचनाकर्म के माध्यम से भारत के इस दुखते अंग की कष्टदायिनी वेदना को भावभूमि प्रदान करते रहे हैं। 'नींव! तुझे नमन 'महाराज कृष्ण भरत का द्वितीय काव्य संग्रह है जो चार खंडों यथा (क) नाड़ी मर्ग के गूंगे लोग, (ख) एक दशक बाद अपने गांव में (ग) मेरे विस्थापित कैंप में जरूर आना तथा (घ) स्मृति शेष में विभाजित है। इस संग्रह में वष्र 1995 से 2005 के मध्य रची गई कविताएं संकलित हैं जो कश्मीर के सामयिक गंभीर हालातों, लोकतांत्रिक

अव्यवस्था, सरकारी तंत्र में भ्रष्टाचार आदि बाध्य क्लिष्टताओं से जूझने के अतिरिक्त विस्थापितों के अनकहे दर्द, भर न पाए नासूर और इस सबके बावजूद उनकी प्रबल देशभक्ति और आतंकवाद के समक्ष घुटने न टेकने की दृढ़ता को बार-बार निरूपित करती है।

घाटी से निकलकर बेघर होने का दर्द ही नहीं, अपने ही देश में शरणार्थी पुकारे जाने की आतंरिक कचोट अधिक असहनीय है। इस पीड़ा के मूल आतंक का एकमात्र उत्तर कवि साहित्य को ही मानता है क्योंकि जब लेखनी की धार तलवार की धार से अधिक सशक्त होती है, फिर 'कविता आग का गोला क्यों नहीं हो सकती?' आज जब इस धर्मनिरपेक्ष देश की आंख धर्म से निरपेक्ष' हो चुकी है तो हाथ फैलाने से बेहतर है मुट्ठियां भींच ली जाएं क्योंकि 'तनी हुई मुट्ठियां ही उड़ान भरने का दम रखती हैं।' आतंक का हमला संसद पर भी हुआ किंतु उपाय के नाम पर बंद का आह्वान ही हमारा संतोष है।

यह कटु सत्य है कि जो अपने ही देश में विस्थापित होकर शरणार्थी कहलाए, उसका जीवन सहज-सामान्य तो नहीं होगा- 'जिंदगी पहाड़ की सीधी चढ़ाई चढ़ना है।' अपनी जड़ से टूटा-छूटा यह कवि जो अनंत व्यथा से लगातार जूझ रहा है, अकेला नहीं है। उसकी सांसों में सात लाख धड़कने शामिल हैं। एक अव्यवस्थित वर्तमान और अनिश्चित भविष्य से रोज संघर्ष करते हुए भी इन हमवतनों की निःस्वार्थ देशभक्ति अप्रतिम दृष्टांत है और सबक है नितांत स्वहित साधक नेता-बनाम अपराधियों के लिए। इन नगण्य मालूम होने वाले असाधारण भारतप्रेमियों ने यातना के गैस चैंबरों में विषाद और पराजय के अगणित क्षण गुजारकर भी आतंकियों का साथ न देने का दुस्साहस दिखाया। 'बगावत के लिए उठे पंजों से हमने नहीं मिलाए हाथ। न मिलाए ही जा सकते हैं' आज़ादी के पचासवें वर्ष के समारोह पर यह आकुलता क्षुब्ध होकर मुखर व्यंग्य बन जाती है- कहीं देशभक्ति के शरणार्थी होने पर तो कभी लोकतांत्रिक व्यवस्था की अव्यावहारिकता और बेमानीपन पर। तंत्र का भ्रष्टाचार यत्र-तत्र व्याप्त है जिसकी अनुभूति इन रचनाओं में क्षणांतराल भर ही कचोटने लगती है। विस्थापित कश्मीरी किसी वर्ग या दल का वोट बैंक नहीं हैं इसलिए उनका कोई राजनीतिक माई-बाप या संरक्षक नहीं है। कैसी विचित्र विडंबना है कि असंख्य माई-बापों को बिना मूल्य उपलब्ध होते हुए भी यह वर्ग लावारिस है, उपेक्षित है।

संकलन के अंतिम अंश 'स्मृति शेष' में कवि की गहनतम अनुभूतियों से स्पंदित रचनाएं हैं। विस्थापन का सर्वाधिक प्रभाव मां पर पड़ता है क्योंकि वही घर-परिवार की धुरी है। हर छोटे-बड़े दुख में समस्त परिवार को अपने आंचल में संभालती मां दुःख की इस बाढ़ को झेलने में असमर्थ हो स्वयं वितस्ता बन जाती हैं।

निश्चित रूप से ये कविताएं कवि की निजी अनुभूतियां होकर भी हर उस व्यक्ति का जाति-धर्म प्रांत भेद से परे प्रतिनिधित्व करती हैं जो विस्थापन, अपने देश में शरणार्थी कहलाने और सरकारी तंत्र की दुर्व्यवस्था के कारण एक बिखरा हुआ जीवन लगातार जीने को विवश है। इन कविताओं में दुखों के निबिड़तम के मध्य आशा के जुगनू जहां-तहां जगमगाते हुए कह रहे हैं- सवेरा होगा, होकर ही रहेगा।

नींव तुझे नमन (कविता संग्रह)/ महाराज कृष्ण भरत/निर्वासन साहित्य प्रकाशन, विस्थापित कैंप नगरोटा-284, जम्मू/2006/150 रुपए

युग
स्पंदन

समकालीन मराठी कविता विशेषांक

जुलाई-दिसंबर, 2010

रचनाकार

अँजेलीना लॉरिन्स गोखले, अर्चना चव्हाण, अनंत कदम, अनिल किणीकर, अनुया कुलकर्णी, अनुराधा चिन्मुळगुंद, अनुराधा पोतदार, अपर्णा आंबेडकर, अपर्णा कडसकर, अमेय गावंड, अरुण कोल्हटकर, अरुण जतकर, अरुण वी. देशपांडे, अरुणा ढेरे, अरुणा देशमुख, अरुणा पवार चवरे, अविनाश वाघमारे, आनंद साठे, आसावरी काकडे, इंदिरा संत, उत्तम कोळगावकर, ऋता डांगे, एकनाथ पगार, ए.डी. जोशी, कमलेश, कल्याणी झा, कविता कांबळे, कुंदा गायकवाड, कुमार अनिल, कुसुमाग्रज, केशव सुत, ग.ल. ठोकल, गीतांजलि अविनाश जोशी, चंचल काळे, चंद्रकला धीवार, चंद्रकला खोत, चंद्रकांत राजगुरु, जयंत भिडे, जयंत वष्ट, जयसिंग पाटील, ज्योति सरदेसाई, ज्योत्स्ना चांदगुडे, त्रिशिलावती कांबळे, दत्तात्रय मुरुमकर, दासू वैद्य, दिलीप पुरुषोत्तम चित्रे, दीपक करंदीकर, दीपा पाटील, दीपाली दातार, नसीम बानू मुजावर, ना. मा. संत, नारायण कुलकर्णी कवठेकर, नारायण सुर्वे, नीतिन तरडे, नीरजा, नीला महाडिक, नीलिमा गुंडी, नीलेश सोनटक्के, पद्मा गोळे, पल्लवी सावंत, पु.शि. रेगे, पूजा नाखले, प्रकाश गोळे, प्रकाश घोडके प्रकाश दुलेवाले, प्र.के. अत्रे, प्रतिमा जोशी, प्रदीप निफाडकर, प्रभा गणोरकर, प्रभा सोनवणे, प्रमोद वाळके, प्रसन्न कुमार पाटील, प्रसेनजीत गायकवाड, प्रज्ञा दया पवार, प्रियदर्शन पोतदार, प्रियांका गायकवाड, बबन सराडकर, बलवंत धोंगडे, बळवंत भोयर, बहिनाबाई चौधरी, बाबा आमटे, बा.भ. बोरकर, बालकवी, भारती देशपांडे, भा.रा. तांबे, भास्कर घाटावकर, मंगला उनवणे साठे, मंगेश जगदाळे, मंगेश पाडगावकर, मधुसूदन घाणेरकर, मनमोहन, मनोज जगदाळे, मनोज साक्रीकर, मनोज सोनकर, महादेव रोकडे, महेश केळुसकर, माधव जूलियन, माधव पंडित, मालती इनामदार, मीनल बाठे, मीना घोरपड़े, मीरा सुंदरराज, मुक्ता गुंडी, यशवंत मनोहर, रंजना जांभुळकर, रंजना पंडित, रणजीत गायकवाड, रवींद्र देवघरे 'शलभ', राजश्री कौसडीकर, राजा फोपे, राघवेंद्र रामकृष्ण गणेशपुरे, राम दलाल, रॉय किणीकर, रेखा बैजल, रेणु सावंत, रेश्मा कारंडे, वर्षा पटारे, बसंत आबाजी डहाके, वसंत सावंत, वा.रा. कांत, वा.रा. गाणार, विंदा करंदीकर, विजय तेंडुलकर, विजय लोहार, वि.दा. सावरकर, विद्यागौरी टिळक, विनिता पिंपळखरे, वि.भ. कुलकर्णी, विशाखा ठाकूर, विश्वजीत तुळजापुरकर, वृंदा विजयकुमार पंचवाघ, वृषाली किन्हाळकर, शंकर रामाणी, शंकर वैद्य, शंतनु चिंधडे, शशिकला कांबळे, शांता शेळके, शालिनी चिपळूणकर, शुभदा शिंदे, शुभांगी रथकंठीवार, श्याम लाटकर, श्रीदेवी वेंदे, संगिता साक्रीकर, संजीवनी बोकील, संदीप खरे, सदानंद रेगे, सरोज व्यास,

सादिका नवाब सहर, साधना ताई आमटे, सीमा गोखले, सुनीता पुरोहित, सुनीति र.र., सुनील केशव देवधर, सुप्रिया दळवी, सुरेखा देवघरे 'शमा', सुरेखा शहा, सुरेश भट, सु.वि. पारखी, सूर्यकांत जाधव, सूर्यकांत मूनघाटे, सोनाली देशमुख, स्नेहसुधा कुलकर्णी, स्वप्ना सुनील गाडगीळ, स्वरदा बुरसे, स्वाति शहा, स्वाति सामक, हिरा बनसोडे, हेमलता ढवळे, हेमा करंजेकर, हृदय चक्रधर

अनुवादक

प्रीति पराग शाह, संग्राम शिंदे, अशोक सी. ढोले, संगीता धर्माधिकारी, संगीता बहिरट, शरद दशपुत्रे, डॉ. भूषण पाटील, डॉ.भाग्यश्री भागवत, शुभांगी बोत्रे, डॉ. विशाखा ठाकूर, डॉ. कांतिदेवी बा. लोधी, सुनीता पुरोहित, अरुण वी. देशपांडे, सुनीता पुरोहित, भारती बालटे, वंदना ठकार, रामदास भ. कोकेर, डॉ. शुभांगी इचलकरंजी, अनिल किणीकर, लीना गोरे, अमित जोशी, सुरेखा द. डांगे, मनोज वायदंडे, संगीता कांबळे, पुरुषोत्तम कुंदे, डॉ. विजया देव, कविता कांबळे, डॉ. क्रांति कुमार, डॉ. यूनुस पठान, डॉ. मीरा सुंदरराज, रश्मि कुलकर्णी, डॉ. कामायनी सुर्वे, डॉ. मधुसूदन घाणेकर, संजू गाडे, अनुराधा चिन्मुळगुंद, प्रियंका दशपुत्रे, डॉ. सुनील केशव देवघर, तोषवी लिमये, वैभव आबनावे, नीलिमा वैद्य, सुनंदा पाटील, डॉ. जयश्री एम. वैद्य, स्मिता खडकीकर, सीमा खुर्पे, डॉ. द.दि. पुंडे, आसावरी काकडे, रोहिणी शर्मा, डॉ. पद्मजा घोरपड़े, डॉ. आस्मा मुजावर, डॉ. मालती रॉय, प्राजक्ता जोशी, पुष्पा पाटील, मधुश्री गायकवाड, नम्रता तारे, पराग शाह, सु.मो. शाह, अपर्णा नायडू, स्वाति गोळे, डॉ. पल्लवी सकुंडे, प्रतिभा साखरे, प्रभा जोशी, शकुंतला पुंडे, शाहीन शेख, सबीहा ईस्माइल शेख, निजाम शेख, गौरी लागू, निदा फाजली, अनिल मकरंद बेलापूरकर, रचना चौहान, सुनेत्रा गोंदकर, प्रतिभा पानसे, नसीमाबानू गफार मुजावर, संजय भिसे, अंजली थोरात, प्रियांका गायकवाड, अर्चना भुस्कुटे, प्रतिभा खैरनार, रविकिरण गळंगे, विजय मनोहर लोहार, अंजली दत्तात्रय कुलकर्णी, अस्मिता लबडे, विजया नागपुरे, अशोक व्यं. पाटील, डॉ. शोभा पाटील, डॉ. प्रकाश सोमण, जीवन मोरे, वसंत धनावडे, मुमताज शेख, मकरंद बेलापूरकर, आस्मा शेख, डॉ. सुजाता शिंदे, मीना चौहान रणपिसे, कौसर, डॉ. जयश्री गावित, डॉ. मीना ढोले, द्राक्षाणि तलगी, डॉ. मालती जावळे, विद्या पंडित, उर्मिला आपटे, मीना गोखले, यशोदा देवरे, चंद्रकला धिवार, डॉ. रेखा कुलकर्णी, प्रियंका, दीपाली दातार, शकीला शेख, भाविका रामटेके, कोमल बल्लाळ, रणजीत गायकवाड, राघवेंद्र रामकृष्ण गणेशपुरे, डॉ. मधुकर खराटे, मीना किणीकर, डॉ. राजेंद्र शहा, डॉ. अनुराधा बापीकर, स्नेहल भोसले, गायत्री वडके, हसीना शेख, डॉ. दिलीप शेठ, प्रताप सिंग चौहान, प्रसन्ना भिडे, नेहा रनसिंह, डॉ. राजेंद्र खैरनार, डॉ. राजश्री कशाळकर, ज्योति जोशी, अर्चना बाबू, वासंतिका पुणतांबेकर, विश्वजीत तुळजापुरकर, वृंदा विजयकुमार पंचवाघ, डॉ. अपर्णा झा, शेख समरीन ईस्माईल, राहुल मेश्राम, शंतनु चिंधडे, संगिता साक्रीकर, सनीश कांबळे, डॉ. सुधांशु गोरे, पल्लवी डोईजड, उषा परदेशी, रेश्मा निलंगेकर, राम बडे, संज्योत आपटे, सुवर्णा केळकर, राजश्री पिल्ले, डॉ. भारती गोरे, नीता शर्मा, सोनाली अडकर, विनय र.र., नेहा, डॉ. कल्पना जोशी, डॉ. उर्मिला पाटील, सुनील केशव देवधर, विद्या देशपांडे, भाविका रामटेके, सुरेखा शहा, सीमा गोखले, सुषमा कोंडे, गायत्री कुलकर्णी, राजेश गोसावी, पल्लवी राऊत, वैशाली चव्हाण, नीता दशपुत्रे, नीरजा बागाईतकर, आर.के. कुरेशी, माधव चिन्मुळगुंद, डॉ. प्रियांका चोरगे, अर्चना वेदपाठक, अश्विनी कांबळे, डॉ. विकास कशाळकर

प्राप्ति-स्वीकार

● खामोश मुहूर्त में (कविता संग्रह) / ए. अयप्पन (तेलुगु से अनुवाद : संतोष अलेक्स □ युक्ति प्रकाशन, ए-2, न्यू इंडिया अपार्टमेंट, प्लॉट सं. 6, सैक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली-110085/ 2011/ 100 रुपए

● फीजी के राष्ट्र-कवि कमला प्रसाद मिश्र व्यक्ति और काव्य/ संपादक : डॉ. जयंती प्रसाद मिश्र □ राजपथ प्रकाशन, 5/23, गीता कॉलोनी, दिल्ली-110031/2010/94 रुपए

● संघर्ष (कविता संग्रह) भरमा नारायण कोलेकर □ प्रबुद्ध समाज मिशन, द्वारा अड. लक्ष्मण वाय, लकोळे, सरस्वती नगर, गणेशपूर-हिंडलगा, बेलगाम/ 2010/ 35 रुपए

● साहित्य की पाठशाला/ संपादक : डॉ. सुधीर शर्मा और जयप्रकाश मानस □ वैभव प्रकाशन, सागर प्रिंटर्स के पास, अमीनपरा चौक, पुरानी बस्ती, रायपुर (छत्तीसगढ़) 2010/ 100 रुपए

● खो गया गांव (कहानी संग्रह) / अपर्णा शर्मा □ माउंट बुक्स, ए-27/2-ए, शास्त्री मार्ग नं. 3, मौजपुर, दिल्ली-110053/ 2010 / 220 रुपए

● प्रतिध्वनि (लघु कथा संकलन) / पी.आर. वासुदेवन 'शेष' □ जी-4, अक्षय फ्लैट्स, 53 इर्रुस्सपा स्ट्रीट, आइस हाउस, ट्रिप्लिकेन, चेन्नई-600005 (तमिलनाडु) / 2010/ 100 रुपए

● साहित्य : विविध संदर्भ (तेलुगु कविता) / शीला वीर्राजु (चयन एवं हिंदी अनुवाद : निर्मलानंद वात्स्यायन) □ यम. मल्लेश्वर राव (निर्मलानंद वात्स्यायन) प्रकाशन, मैत्री सदनम 1-8-726/42/7, अच्चय्या नगर, नल्लकुंटा, हैदराबाद-500046 (आंध्र प्रदेश) / 2010/ 200 रुपए

● सपनों की राहें और समय का सच (कविता संग्रह)/ पद्मजा घोरपड़े □ युक्ति प्रकाशन, ए-2, न्यू इंडिया अपार्टमेंट, प्लॉट सं. 6, सैक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली-110085/2010/ 100 रुपए

● रिश्ते की जड़ (कविता संग्रह) भुवनेश्वर डेका □ विकी पब्लिशर्स, सरस्वती अपार्टमेंट, चिलाराय नगर पथ, भाड़ागड़, गुवाहाटी-781005/ 2010/ 50 रुपए

● ऐसे जिया जाता है (कविता संग्रह)/ महेश चंद शर्मा गौतम □ निर्मल पब्लिकेशन्स, ए-139, गली नं. 3, 100 फुटा रोड, कबीर नगर, शाहदरा, दिल्ली-110094/ 2010/ 100 रुपए

● अंतर्यात्रा/ एहसास के पल (दोनों कविता संग्रह)/ सुनीता शर्मा □ राधा प्रकाशन, विहार घाट, वृंदावन / वि. सं. 2067/ क्रमशः 200 और 250 रुपए

● सपनों को साकार करेंगे/ राकेश 'चक्र' आर.के. पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, एल-45, गली नं. 5, शिवाजी मार्ग, करतार नगर, दिल्ली-110053/ 2009/ 300 रुपए

● आज का दुर्वासा (कहानी संग्रह/ संतोष खन्ना □ भारत ज्योति प्रकाशन, बीएच-48 (पूर्वी) शालीमार बाग, दिल्ली-110088/ 2009/ 250 रुपए

● रक्त-पुष्प (गीत-कविता संग्रह)/ रतन जैन □ हिंदी साहित्य समिति, छुईखदान, जिला राजनांदगांव (छत्तीसगढ़) 491885/ 2008/ 125 रुपए

● पंडित जगन्नाथ प्रसाद 'जीव' कवि और काव्य/ संपादन एवं टीका : डॉ. जयंती प्रसाद मिश्र □ श्याम प्रकाशन, सी-2, कंचन अपार्टमेंट्स, गीता कालोनी, दिल्ली-110031/ 2008/ 150 रुपए

युग स्पंदन

के कुछ गौरवशाली अंक

- कविता विशेषांक (जुलाई-दिसंबर 1990)
- समकालीन हिंदी आलोचना विशेषांक (1991)
- समकालीन भारतीय कविता विशेषांक (जुलाई-सितंबर 1993)
- अफ्रीकी कवयित्रियों की कविताएं (अक्तूबर-दिसंबर 1993)
- कुमार शैलेंद्र के गीत विशेषांक (जुलाई-सितंबर 1994)
- शभा खान की कहानियां (अक्तूबर-दिसंबर 1995)
- समकालीन मलयालम कविता विशेषांक (अप्रैल-सितंबर 2000)
- समकालीन तमिल कविता विशेषांक (अक्तूबर-दिसंबर 2000)
- समकालीन तेलुगु कविता विशेषांक (जनवरी-सितंबर 2001)
- माँ (भारतीय कविता) विशेषांक (जनवरी-सितंबर 2002)
- समकालीन कन्नड कविता विशेषांक (अक्तूबर-दिसंबर 2002)
- स्वातंत्र्योत्तर भारतीय कविता में 'माँ' विशेषांक (जनवरी-जून 2003)
- 'वैरमुत्तु' पर केंद्रित अंक (जुलाई-सितंबर 2003)
- आतंकवाद, संस्कृति एवं सभ्य समाज विशेषांक (अक्तूबर-दिसंबर 2003)
- महेंद्र कार्तिकेय स्मृति अंक (जनवरी-जून 2004)
- नील पद्मनाभन पर केंद्रित अंक (जुलाई-दिसंबर 2004)
- मातृभाषा-माहात्म्य पर केंद्रित अंक (जनवरी-मार्च 2005)
- मानव अधिकार पर केंद्रित अंक (2006)
- संत कबीर विशेषांक (जनवरी-जून 2007)
- डॉ0 एन0 चंद्रशेखरन नायर विशेषांक (अक्तूबर-दिसंबर 2007)
- समकालीन ओड़िया कविता विशेषांक (अक्तूबर 08-मार्च 09)
- डॉ0 बालशौरि रेड्डी विशेषांक (जनवरी-मार्च 2010)
- समकालीन हिंदी कविता विशेषांक (अप्रैल-जून 2010)

'युग स्पंदन' कार्यालय, 10841/44, मानकपुरा, करोल बाग, नई दिल्ली-5 से श्री कन्हैया लाल द्वारा प्रकाशित व तरुण प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-32 से मुद्रित ☐ अवैतनिक संपादक : भ.प्र. निदारिया